तृतीय वर्ष कला

सत्र - V (CBCS)

हिंदी प्रश्न पत्र क्र.७

साहित्य समीक्षा : छंद एवं अलंकार

(LITERARY CRITICISM : PROSODY & RHETORICS)

विषय कोड :97102

© UNIVERSITY OF MUMBAI

प्राध्यापक सुहास पेडणेकर
कुलगुरू,
मुंबई विद्यापीठ, मुंबई

प्राध्यापक रविंद्र द. कुलकर्णी
प्र-कुलगुरु,
मुंबई विद्यापीठ, मुंबई

प्राध्यापक प्रकाश महानवार
संचालक,
दूर व मुक्त अध्ययन संस्था, मुंबई विद्यापीठ, मुंबई

कार्यक्रम समन्वयक : **श्री. अनिल आर. बनकर**
सहयोगी प्राध्यापक इतिहास एवं कला शाखा प्रमुख,
दूर व मुक्त अध्ययन संस्था, मुंबई विद्यापीठ, मुंबई

अभ्यास समन्वयक एवं संपादक : **डॉ. संध्या शि. गर्जे**
सहायक प्राध्यापक,
दूर व मुक्त अध्ययन संस्था, मुंबई विद्यापीठ
सांताक्रुझ (पू), मुंबई - ४०० ०९८

लेखक : **डॉ. अजीत कुमार राय**
सहाय्यक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
के.सी. महाविद्यालय, चर्चगेट, मुंबई

डॉ. महात्मा पाण्डेय
सहाय्यक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
साठ्ये महाविद्यालय, विले पार्ले, मुंबई

ऑगस्ट २०२२, मुद्रण - १, ISBN-978-93-91735-07-4

प्रकाशक : संचालक, दूर व मुक्त अध्ययन संस्था, मुंबई विद्यापीठ,
विद्यानगरी, मुंबई -४०० ०९८.

अक्षर जुळणी व मुद्रण : मुंबई विद्यापीठ मुद्रणालय,
विद्यानगरी, सांताक्रुझ (पू), मुंबई

अनुक्रमणिका

क्रमांक	अध्याय	पृष्ठ क्रमांक
१.	साहित्य स्वरूप, परिभाषा और साहित्य के तत्व	०१
१.१	साहित्य के हेतु, साहित्य के प्रयोजन	१०
२.	कला : स्वरूप और परिभाषा, कलाओंका वर्गीकरण	२३
२.१	काव्य कला की श्रेष्ठता, कला और साहित्य का संम्बन्ध	३६
३.	काव्य के रुप – महाकाव्य, खंडकाव्य	४३
४.	काव्य के रुप – मुक्तक काव्य, गीति काव्य	५२
५.	काव्य के रुप – गजल	६१
६.	छन्द : सामान्य परिचय, लक्षण एवं उदाहरण मात्रिक छंद	७०
७.	छन्द : सामान्य परिचय, लक्षण एवं उदाहरण वर्णिक छंद	७८

❖❖❖❖

NAME OF PROGRAM	T. Y. B. A. (C.B.C.S.) VII
NAME OF THE COURSE	T.Y.B.A. HINDI
SEMESTER	V
PAPER NAME	LITERARY CRITICISM : PROSODY & RHETORICS साहित्य समीक्षा : छंद एवं अलंकार
PAPER NO.	VII
COURSE CODE	UAHIN–504
LACTURE	60
CREDITS & MARKS	CREDITS - 4 & MARKS -100

साहित्य समीक्षा : स्वरूप एवं सामान्य परिचय

इकाई– I समीक्षा–

- साहित्य: स्वरूप और परिभाषा (भारतीय एवं पाश्चात्य)
- साहित्य के तत्व
- साहित्य के हेतु
- साहित्य के प्रयोजन (भारतीय एवं पाश्चात्य)

इकाई– II कला–

- स्वरूप और परिभाषा
- कलाओं का वर्गीकरण
- काव्य कला की श्रेष्ठता
- कला और साहित्य का संबंध

इकाई– III काव्य के रूप–

- महाकाव्य: भारतीय एवं पाश्चात्य मान्यताओं का परिचय
- खंडकाव्य: स्वरूप और विशेषताएँ
- मुक्तक काव्य: स्वरूप और विशेषताएँ
- गीतिकाव्य: स्वरूप और विशेषताएँ
- ग़ज़ल : स्वरूप और विशेषताएँ

इकाई– IV छंद : सामान्य परिचय, लक्षण एवं उदाहरण–

- मात्रिक छंद:– 1. चौपाई 2. रोला 3. दोहा 4. हरिगीतिका 5. उल्लाला 6. ताटंक 7. सोरठा 8. कुंडलिया
- वर्णिक छंद:– 1. इंद्रवज्रा 2. उपेंद्रवज्रा 3. द्रुतविलंबित 4. वंशस्थ 5. भुजंगी 6. तोटक 7. वसंततिलका 8. घनाक्षरी

१

साहित्य स्वरूप , परिभाषा और साहित्य के तत्व

इकाई की रूपरेखा :

१.० इकाई का उद्देश्य

१.१ प्रस्तावना

१.२ साहित्य : स्वरूप और परिभाषा

१.३ साहित्य के तत्व

१.३.१ भावतत्व

१.३.२ विचार तत्व अथवा बद्धी तत्व

१.३.३ कल्पना तत्व

१.३.४ शैली तत्व

१. ४ सारांश

१. ५ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१. ६ लघुत्तरी प्रश्न

१. ७ संदर्भ पुस्तके

१.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी निम्नलिखित मुद्दों से अवगत होंगे |

साहित्य के स्वरूप और परिभाषा को जान सकेंगे |

साहित्य के तत्व को समझ सकेंगे |

१.१ प्रस्तावना

साहित्य समाज का दर्पण माना जाता है | साहित्यकार समाज के सभी घटकों को आंतरिक और बाह्य दृष्टि से वर्णीत करने की ताकत राखता है | साहित्यकार की लेखनी उद्देश्यगत रूप से यदि लोक कल्याणकारी भावना को अग्र रूप में रखती है तो समाज को सही दिशा मिलती है |साहित्य का उगम आदिकाल से ही माना जाता है | साहित्य का स्वरूप, विभिन्न

विद्वानो के अनुसार साहित्य की परिभाषा, साहित्य के तत्व का अध्ययन करना साहित्य की परिपाटी की दृष्टि से हमारे लिए अनिवार्य हो जाता है |

१.२ साहित्य: स्वरूप और परिभाषा (भारतीय एवं पाश्चात्य)

वैसे तो साहित्य शब्द दो शब्दों स+हित से मिलकर बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ सहभाव यानी हित का साथ होना है। इस प्रकार साहित्य में निहित सहित शब्द का एक व्यापक सामाजिक अर्थ भी है जो उसके उद्देश्य और प्रयोजन की ओर संकेत करता है | जब कोई अपने और पराये की संकुचित सीमा से ऊपर उठकर सामान्य मनुष्यता की भूमि पर पहुँच जाए तो समझना चाहिए कि वह साहित्य धर्म का निर्वाह कर रहा है | पुराने आचार्य अपनी विशेष शब्दावली में इसी को लोकोत्तर और अलौकिक कहते थे | आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसी को आज की भाषा में हृदय की मुक्तावस्था कहा है | जिस मुक्त अवस्था का अनुभव हृदय करता है, वह इसी लोक के बीच संभव है | इसे परलोक की कोई अनूठी चीज़ समझना ठीक नहीं | इस प्रकार साहित्य के संसार में शब्द और अर्थ सौन्दर्य के लिए आपस में होड़ करते हुए लोकमंगल के ऊँचे आदर्श की ओर अग्रसर होते हैं | दुनिया में सबसे पुराना वाचिक साहित्य हमें आदिवासी भाषाओं में मिलता है। इस दृष्टि से आदिवासी साहित्य सभी साहित्य का मूल स्रोत है। भारत का संस्कृत साहित्य ऋग्वेद से आरम्भ होता है। व्यास, वाल्मीकि जैसे पौराणिक ऋषियों ने महाभारत एवं रामायण जैसे महाकाव्यों की रचना की। भाट, कालिदास एवं अन्य कवियों ने संस्कृत में नाटक लिखे। भक्ति साहित्य में अवधी में गोस्वामी तुलसीदास, ब्रज भाषा में सूरदास तथा रैदास, मारवाड़ी में मीराबाई, खड़ीबोली में कबीर, रसखान, मैथिली में विद्यापति आदि प्रमुख हैं। अवधी के प्रमुख कवियों में रमई काका सुप्रसिद्ध कवि हैं। हिन्दी साहित्य में कथा, कहानी और उपन्यास के लेखन में प्रेमचन्द का महान योगदान है। ग्रीक साहित्य में होमर का इलियड और ऑडसी विश्व प्रसिद्ध हैं। अंग्रेज़ी साहित्य में शेक्स्पियर का नाम कौन नहीं जानता।

१.२.१ साहित्य का स्वरूप

भाषा के माध्यम से अपने अंतरंग की अनुभूति, अभिव्यक्ति कराने वाली ललित कला 'काव्य' अथवा 'साहित्य' कहलाती है। (ललित, कला अथवा अँग्रेजी का Fine Art शब्द उस कला के लिए प्रयुक्त होता है, जिसका आधार सौंदर्य या सुकुमारता है। जैसे- चित्रकला, नृत्य, शिल्पकला, वास्तुकला, संगीत आदि। किन्तु आधुनिक धारणाओं के साथ ललित कला में अपेक्षित सौन्दर्यभाव, रमणीयता का भाव धीरे-धीरे लुप्त हो रहा है। अत: हर ललित कला सौंदर्य की निर्मिति करनेवाली हो, यह संभव नहीं। यथार्थ के अंकन के साथ 'सौंदर्य' इस शब्द का बदलता अर्थ हम देख रहे है।) साहित्य की व्यूत्पति को ध्यान में रखकर इस शब्द के अनेक अर्थ प्रस्तुत किए गए है। 'यत' प्रत्यय के योग से साहित्य शब्द की निर्मिति हुई है। शब्द और अर्थ का सहभाव ही साहित्य है। कुछ विद्वानों के अनुसार हितकारक रचना का नाम साहित्य है।

साहित्य शब्द का प्रयोग ७-८ वीं शताब्दी से मिलता है। इससे पूर्व साहित्य शब्द के लिए काव्य शब्द का प्रयोग होता था। भाषाविज्ञान का यह नियम है, कि जब एक ही अर्थ में दो शब्दों का प्रयोग होता है, तो उनमें से एक अर्थ संकुचित या परिवर्तित होता है। संस्कृत में

जब एक ही अर्थ में साहित्य और काव्य शब्द का प्रयोग होने लगा, तो धीरे-धीरे काव्य शब्द का अर्थ संकुचित होने लगा। आज काव्य का अर्थ केवल कविता है और साहित्य शब्द को व्यापक अर्थ में लिया जाता है। साहित्य का तात्पर्य अब कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, आत्मकथा अर्थात गद्य और पद्य की सभी विधाओं से है। काव्य के स्वरूप को लेकर उसे परिभाषित करने का प्रयास इ.स. पूर्व 200 से अब तक हो रहा है। विविध विद्वानों ने साहित्य के लक्षण प्रस्तुत करते हुए उसे परिभाषित करने का प्रयास किया। किंतु इन प्रयासों में कहीं अतिव्याप्ति, तो कहीं अव्याप्ति का दोष है। काव्य को परिभाषित करते समय यह विद्वान अपने समकालीन साहित्य तथा साहित्य विषयक धारणाओं से प्रभवित रहे है।

१.२.२ साहित्य की परिभाषा :

साहित्य का स्वरूप बहुत व्यापक है, इसे किसी परिभाषा के अंतर्गत बांध पाना मुश्किल ही नहीं अपितु असंभव–सा है। लेकिन अलग-अलग भाषाओं के विद्वानों ने समय-समय पर साहित्य को परिभाषित करने का प्रयास किया है। प्रारंभ में संस्कृत के विद्वानों ने साहित्य को काव्य के रूप में परिभाषित किया है। वहीं हिन्दी के विद्वानों ने इसे साहित्य के रूप में परिभाषित किया है। यहां पर हम भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार दी गई परिभाषाओं के माध्यम से साहित्य को परिभाषित करने का प्रयास करेंगे।

१.२.२.१ हिंदी के विद्वानों द्वारा दी गई साहित्य की परिभाषा :

हिंदी के विद्वानों के अनुसार लक्षण ग्रंथों के निर्माण की परंपरा आचार्य केशवदास से मानी जाती है। अतः हिंदी साहित्य शास्त्र का प्रारंभ उन्हीं से माना जाना उचित प्रतीत होता है। आदिकाल में काव्य अंगों का भले ही गंभीर अध्ययन ना हुआ हो, लेकिन कवियों ने काव्य प्रयोजन, काव्य हेतु, भाषा प्रयोग आदि के लक्षण प्रस्तुत किए गए हैं। भक्तिकाल के कवियों की उक्तियों में भी साहित्य के लक्षण प्राप्त होती है। जैसे कबीर कहते हैं - 'तुम जीन जानो गीत है, यह नीज ब्रह्म विचार।'

वैसे साहित्य को परिभाषित करने का विचार रीतिकाल में प्रखरता से होने लगा। किन्तु मध्यकालीन आचार्यों द्वारा प्रस्तुत परिभाषाओं में मौलिक चिंतन का अभाव रहा। क्योंकि वे अधिकांशतया संस्कृत के किसी-न-किसी आचार्य द्वारा दी गई परिभाषा का अनुवाद करते रहे हैं। इनमें केशवदास, चिंतामणि त्रिपाठी, कुलपति मिश्र, कवि ठाकुर आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

संस्कृत साहित्य शास्त्र में प्राप्त परिभाषाओं के समान हिंदी विद्वानों ने भी साहित्य को विशिष्ट मत या विचार को सामने रख कर परिभाषित करने का प्रयास किया है। अपनी परिभाषा में विद्वानों ने साहित्य को कहीं काव्य तो कहीं कविता कह कर भी संबोधित किया है, जिनमें से कुछ परिभाषाएं निम्नवत हैं -

१) जो प्रभावशाली रचना पाठक और श्रोता के मन पर आनंददाई प्रभाव डालती है, कविता कहलाती है। इनके अनुसार काव्य में विलक्षणता होती है, जिसमें आनंद निर्माण करने की क्षमता होती है। - आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी

२) जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रस दशा कहलाती है। हृदय की मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है, उसे कविता कहते है। - आचार्य रामचंद्र शुक्ल

३) I) कविता जीवन और जगत की अभिव्यक्ति है।

II) काव्य वह है जो हृदय में अलौकिक आनंद या चमत्कार की सृष्टि करें। -

आचार्य श्यामसुंदर दास

४) काव्य आत्मा की संकल्पनात्मक अनुभूति है, जिसका संबंध विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से नहीं होता। वह एक रचनात्मक ज्ञानधारा है। - जयशंकर प्रसाद

५) सरस शब्दार्थ का नाम काव्य है। - डॉ. नगेंद्र

१.२.२.२ पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाएं :

पाश्चात्य साहित्य शास्त्र का प्रारंभ प्लेटो से माना जाता है। तत्कालीन साहित्य और साहित्य विषयक धारणाओं के परिप्रेक्ष्य में इन परिभाषाओं को समझा जा सकता है। कुछ पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाएं निम्नवत हैं -

१) साहित्य अज्ञान जन्य होता है। साहित्य जीवन से दूर होता है, क्योंकि भौतिक पदार्थ स्वयं ही सत्य की अनुकृति है। फिर साहित्य तो भौतिक पदार्थों की अनुकृति होता है। अतः वह अनुकरण का अनुकरण होता है। साहित्य शूद्र मानवीय वासनाओं से उत्पन्न होता है और शूद्र वासनाओं को उभारता है। अतः वह हानिकारक होता है। - प्लेटो

२) Poetry is an imitation of nature through medium of language. अर्थात साहित्य भाषा के माध्यम से प्रकृति का अनुकरण है। प्लेटो के शिष्य अरस्तू ने साहित्य को राजनीति तथा नीतिशास्त्र की दृष्टि से न देख कर सौंदर्यशास्त्र की दृष्टि से उसका विवेचन किया है। - अरस्तु

अरस्तु की इस परिभाषा में अनुकरण से तात्पर्य मात्र नकल करना नहीं; बल्कि पुनः सृजन है। इस दृष्टि से अरस्तु के अनुसार "साहित्य जीवन और जगत का कलात्मक और भावनात्मक पुनःसृजन है।"

३) Poetry is a spontaneous overflow of powerful feeling it takes its origin from emotion. अर्थात स्वच्छंदतावादी कवि विलियम्स वर्ड्सवर्थ के अनुसार प्रबल मनोवेगों का सहज उच्छृंखलन कविता है। अर्थात भावना का सहज उद्रेक ही कविता है। वर्ड्सवर्थ कविता में सहजता को महत्व देते है। इसमें भावनाएं जब लबालब भर जाती है, तो उसी आधार पर वह सहज प्रकट होती है। - विलियम वर्ड्सवर्थ

४) Poetry is the best word in best order. अर्थात सर्वोत्तम शब्दों का सर्वोत्तम विधान ही कविता है। - सैम्युअल टेलर कॉलरिज

५) Poetry is the record of the best and happiest movement of the happiest and best minds. अर्थात सुखी और मन को आनंद देने वाले क्षणों में सुखद मन के आधार पर प्रकट हुई रचना कविता है। - पी.वी शैली

६) Poetry is a criticism of life. अर्थात कविता अपने मूल रूप में जीवन की आलोचना है। - मैथ्यू अर्नाल्ड

उपरोक्त परिभाषाओं को देखकर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है, कि यह सभी परिभाषाएं विशिष्ट साहित्य, विशिष्ट मत तथा मतवाद से प्रेरित हैं।

१.३ साहित्य के तत्व

साहित्य को ठीक से समझने के लिए लक्षणों के साथ-साथ उसके प्रमुख तत्वों की पहचान भी आवश्यक है। भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने साहित्य के स्वरूप के संबंध में उसके तत्वों का भी उल्लेख किया है। काव्य बनाने के लिए, उसका अस्तित्व सिद्ध करने के लिए जो तत्व होते हैं ; उन्हें ही काव्य के तत्व कहा जाता है। काव्य के यह अनिवार्य तत्व है। अतः इन्हें मूलभूत तत्व भी कहा जाएगा। काव्य में एक विशिष्ट प्रकार का भाव होता है ; इस भाव को ठीक से परखने वाला, सोचने वाला एक विचार होता है ; इसे सजाने वाला भी एक तत्व होता है तथा इसे प्रकट करने वाला भी एक तत्व होता है। इन सभी का मिला हुआ जो रूप तैयार होता है, उसे ही काव्य के तत्व कहा जाएगा।

इस आधार पर काव्य के तत्व निम्न अनुसार है -

१.३.१ भाव तत्व –

भाव तत्व साहित्य में सबसे अधिक प्रभाव उत्पन्न करने वाला साहित्य का प्राण तत्व है। भाव ही कवि की कल्पना का प्रेरक है। भाव के आधार पर ही कविता आकार ग्रहण करती है। भाव जितना अच्छा होगा, कविता उतनी अच्छी होती है। इसलिए कविता का प्रभाव, उसका महत्व भाव तत्व पर निर्भर होता है। संस्कृत आचार्यों ने काव्य में भावों को जीवंत तत्व माना है भाव ही काव्य को शक्ति प्रदान करते हैं|

भाव तत्व के कारण साहित्य को शास्त्र से पृथक माना जाता है। साहित्य की सरसता का आधार भाव तत्व ही होता है। चित्त की स्थायी और अस्थायी वृत्तियों का नाम भाव है। भावतत्व साहित्य की प्रभावात्मकता और संप्रेषणीयता का आधार है। भाव विचारों की अपेक्षा अधिक संप्रेषणशील होते है। इसलिए साहित्य का विचार तत्व भी भाव तत्व द्वारा नियंत्रित होता है। भाव कविता का आधार, कविता की शक्ति तो है; लेकिन काव्य को संपूर्ण रूप से प्रभावी बनाने के लिए भावों में विविधता का होना आवश्यक है। विविधता के कारण ही काव्य एकरस होने से बचता है। इतना ही नहीं अंत तक काव्य प्रभावी बनाने के लिए भी भावों में विविधता का होना आवश्यक है।

विविधता के साथ ही काव्य का उदात्त होना आवश्यक है। काव्य के जितने भी भाव होते हैं, वह सस्ते मनोरंजन के लिए नहीं होते। भावों का स्थाई प्रभाव होना चाहिए। इसीलिए भावों का उदात्त होना आवश्यक है। उदात्तता के कारण ही काव्य भव्य-दिव्य बनता है। भावों में

निरंतरता का गुण भी होना चाहिए, जिसके कारण पाठक साहित्य को आद्योपांत पढ़े। भाव जितने मौलिक होते हैं, काव्य उतना ही उत्कृष्ट और प्रभावी होता है। काव्य को सर्वश्रेष्ठ बनाने के लिए भावों का मौलिक होना आवश्यक है।

वैसे भावाभिव्यक्ति चाहे कितनी ही सशक्त या सुंदर हो, उसी आधार पर वह साहित्य नहीं कहलाती है । निरीभावाभिव्यक्ति, निरंकुश भावाभिव्यक्ति साहित्य को असुंदर तथा अहितकर बना देती है। तात्पर्य यही कि भाव भी बुद्धि द्वारा नियंत्रित होते है। स्पष्ट है कि, भावों की प्रभावात्मकता तथा संक्रमकता जहां एक ओर उसकी प्रासंगिकता पर अर्थात स्वानुभव पर निर्भर है, तो दूसरी ओर उसके बुद्धि द्वारा नियंत्रित होने पर भी। भाव तत्व साहित्य का अभिन्न तथा अनिवार्य तत्व जरूर है, लेकिन उसकी स्थिति साहित्य की विभिन्न विधाओं में समान रूप से नहीं है। प्रगीत में यह अत्याधिक प्रखर रूप में अभिव्यक्त होता है। युगीन परिवेश तथा विशेष मताग्रह का असर भी भाव तत्व की स्थिति पर होता है।

प्रारंभ से साहित्य का प्रयोजन मात्र रसास्वादन या आनंद नहीं रहा है। इसलिए आज भाव तत्व के साथ विचार तत्व की मात्रा पहले से अधिक बढ़ती देखी जा सकती है।

१.३.२ विचार तत्व अथवा बुद्धि तत्व :

विचार तत्व का महत्व इसी में है कि भाव, कल्पना आदि का ठीक संयोजन और शब्द का प्रयोग औचित्यपूर्ण हो । औचित्य के बिना विश्वसनीयता और प्रभाव नष्ट हो जाते हैं। भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने इस तत्व को महत्वपूर्ण माना है। विचार तत्व का संबंध अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों से है। बुद्धि तत्व के आधार पर ही काव्य में विचार लाए जाते हैं। बुद्धि तत्व का संबंध विचारों और तत्वों से है। प्रत्येक साहित्य में किसी न किसी मात्रा में तथ्यों, विचारों और सिद्धांतों का समावेश किया जाता है। बुद्धि तत्व के आधार पर काव्य में विशिष्ट विचारों का निर्माण किया जाता है। इन्हीं विचारों के आधार पर व्यक्ति मन तथा समाज मन संस्कारित किए जाते हैं। अतः साहित्य में वस्तुओं और घटनाओं का चित्रण उसके उचित रूप में ही किया जाता है। प्रमुखतया इसका स्वरूप कथा संगठन, चरित्र चित्रण और भाव निरूपण के क्षेत्र में देखा जा सकता है।

कथावस्तु की सूक्ष्म रेखाओं के निर्माण के लिए अर्थात घटनाओं का चुनाव करना घटनाओं को संग्रहित करना की उसका यथेष्ट प्रभाव पड़े और कर्म के अनुरूप फल दिखाने के लिए बुद्धि तत्व का प्रयोग किया जाता है। इस तत्व के कारण भावनाओं पर अंकुश रखा जाता है। बुद्धि तत्व में ऐसे विचारों की अपेक्षा की जाती है, जो दार्शनिक की तरह सत्य का निर्माण करने वाला हो। इसी सत्य के कारण यह विचार काल की मर्यादा के परे होते है। फिर भी इस प्रश्न पर विचार करना आवश्यक है कि साहित्य में विचारों का क्या महत्व है ? विचारों का चित्रण उसी सीमा तक ग्राह्य माना जा सकता है, जहां वे रचना के भाव सौंदर्य में बाधक न बने। भावशून्य विचारों का वर्णन साहित्य को उसकी विशिष्ट उपाधि से वंचित करके दर्शन नीतिशास्त्र या उपदेश ग्रंथ का रूप प्रदान कर देता है। जिस तरह विचार तत्व भाव तत्व को निरी भावुकता तथा निरर्थक प्रलाप होने से बचाता है ; उसे आधारभूमि प्रदान कर उन्हें व्यवस्थित बनाकर अभिव्यक्तिक्षम एवं संप्रेषणीय बनाता है ; उसी प्रकार भाव तत्व विचार तत्व को शुष्क बौद्धिक होने से बचा कर उन्हें सहज ग्राह्य और प्रभावी बनाता है। अतः स्पष्ट है कि निरंकुश भावाभिव्यक्ति मात्र प्रलाप बन जाती है, साहित्य नहीं। वैसे ही

मात्र विचारों की अभिव्यक्ति बोझिल पांडित्य प्रदर्शन मात्र बन जाती है, साहित्य नहीं। इसी कारण भाव और विचारों का तादात्म्य साहित्य के लिए अनिवार्य होता है।

१.३.३ कल्पना तत्व :

साहित्य में भावनाओं का चित्रण कल्पना के द्वारा ही संभव है। इसी कल्पना के कारण कवि औरों के सुख-दुख और दूसरों की अनुभूतियों का चित्रण इस प्रकार कर देता है कि वह हमारा सुख दुख बन जाता है। वह परोक्ष की घटना को प्रत्यक्ष रूप में, अतीत की घटना को वर्तमान में और सूक्ष्म भावों को स्थूल रूप में प्रस्तुत कर देता है। इसका श्रेय उसकी कल्पना शक्ति को ही है। काव्य में सौंदर्य और चमत्कार की सृष्टि भी कल्पना के द्वारा ही संभव है। वस्तुतः प्रत्येक युग और प्रत्येक भाषा का साहित्य कल्पना शक्ति की अपूर्व क्षमता, उसके द्वारा निर्मित वैभाव और अलौकिक चमत्कार की कहानियों से भरा पड़ा है। साहित्यकार की क्षमता असत्य को सत्य में स्थूल को सूक्ष्म में लौकिक को अलौकिक में परिवर्तित करने की विशेष शक्ति से संपन्न होती है। लेखक की कल्पना विषय की समुचित अवधारणा, तदनुरूप कथानक एवं घटनाएं गढ़ती है, पात्रों का चरित्र गढती है, उसका नामकरण करती है, संवादों के लिए भाषा का चुनाव करती है और अनुरूप वातावरण बनाती है। कलाकार इसकी सहायता से बाह्य जगत को अधिकपूर्ण एवं सुंदर बनाकर प्रस्तुत करता है।

साहित्य का केंद्रीय तत्व भाव है और कल्पना उसे प्रभावी रूप प्रदान करती है। परंतु कल्पना कभी-कभी भाव से भी अपनी शक्ति को सशक्त बनाकर स्वतंत्र रूप में प्रदर्शन करने लगती है; तब साहित्य का सौंदर्य नष्ट हो जाता है। भावशून्य कल्पना से साहित्य कोरा चमत्कार ही बन कर रह जाता है बिहारी के वियोग श्रृंगार से संबंधित दोहे इसके उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किए जा सकते हैं। वास्तव में कल्पना का प्रयोग भावना के सार्थक चित्रण में होना चाहिए अन्यथा उसका अपना कोई स्वतंत्र महत्व नहीं है।

१.३.४ शैली तत्व :

काव्य के कला पक्ष से संबंधित इस तत्व को 'शब्द तत्व' भी कहा जाता है। रचनाकार जिस भाषा, जिस रूप और जिस पद्धति से अपनी अनुभूति को अभिव्यंजित करता है, उसे शैली कहा जाता है। इसके अंतर्गत भाषा, शब्द चयन, अलंकारों का प्रयोग, शब्द का उपयोग, साहित्य स्वरूप आदि का समावेश होता है। इस तत्व को अधिकांश भारतीय विद्वान शरीर तत्व के रूप में परिभाषित करते है। इस तत्व का आधार भाषा है। अतः इसे भाषिक संरचना भी कहा गया है। शैली काव्य के बाह्य अंग से संबंधित होती है। जिस प्रकार शरीर के अभाव में प्राण का अस्तित्व नहीं होता, उसी प्रकार भाषा के अभाव में साहित्य की कल्पना संभव नहीं है। सर्वोत्कृष्ट साहित्य वह है, जिसमें भाव पक्ष व शैली पक्ष दोनों में अद्भुत समन्वय हो। किंतु जब कविगण मात्र शैली पर ही ध्यान केंद्रित करता है और भाव पक्ष का विस्मरण कर बैठता है, तो काव्यत्व क्षीण हो जाता है।

उपर्युक्त साहित्य के तत्वों का सूक्ष्मता से अध्ययन करने के उपरांत स्पष्ट होता है, कि साहित्य के तत्व किसी जड़ वस्तु के अंगों के समान अलग-अलग नहीं होते; बल्कि एक दूसरे के साथ इस तरह मिले हुए होते हैं कि इनको अलग-अलग करना संभव नहीं होता।

भाव, विचार, कल्पना, शैली का संगठित रूप साहित्य होता है। युगीन परिवेश और विशेष मताग्रह के अनुरूप इन तत्वों में से किसी एक तत्व की व्याप्ति बढ़ जाती हुई दिखाई देती है। विधा विशेष के अनुरूप किसी विशेष मत की प्रधानता हो जाती है। फिर भी अन्य तत्व भी कम-अधिक मात्रा में प्रत्येक साहित्य में विद्यमान होते है।

१.४ सारांश

साहित्य पठन और लेखन व्यतिरिक्त साहित्य क्या है ? इसका स्वरूप और तत्व कौन-कौन से है साथ ही साहित्य को विद्वानों द्वारा विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया गया है यह सभी जानकारी और इस विषय के आन्तरिक और बाह्य ज्ञान से विद्यार्थी साहित्य के सभी घटकों से उक्त इकाई के अध्ययन के माध्यम से अवगत हुए |

१. ५ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) साहित्य के स्वरूप और साहित्य के तत्व का वर्णन कीजिए |

२) साहित्य की परिभाषा देते हुए उसके स्वरूप को स्पष्ट कीजिए |

१. ६ लघुत्तरी प्रश्न

१) संस्कृत के विद्वानों ने साहित्य को किस रूप में परिभाषित किया है?

उत्तर : संस्कृत के विद्वानों ने साहित्य को काव्य के रूप में परिभाषित किया है

२) होमर का इलियड और ऑडसी विश्व प्रसिद्ध साहित्यकारों ने कौनसी भाषा में साहित्य लिखा हैं ?

उत्तर : ग्रीक भाषा में होमर, इलियड और ऑडसी विश्व प्रसिद्ध साहित्यकारों ने साहित्य लिखा हैं।

३) साहित्य शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम कब हुआ ?

उत्तर : ७-८ वी शताब्दी में

४) 'काव्य वह है जो हृदय में अलौकिक आनंद या चमत्कार की सृष्टि करे |' साहित्य के संबंध में यह परिभाषा किस विद्वान ने दी है ?

उत्तर : श्याम सुन्दर दास

५) आचार्य भामह ने किसे प्रमुख काव्य हेतु माना है |

उत्तर : आचार्य भामह ने प्रतिभा को प्रमुख काव्य हेतु माना है |

१. ७ संदर्भ पुस्तके

१) काव्य शास्त्र - भगीरथ मिश्र विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी.

२) साहित्य समीक्षा – रामरतन भटनागर, किताबमहल, इलाहाबाद

३) हिन्दी साहित्य समीक्षा – श्रीमूर्ति सुब्रह्मराय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रवास

४) भारतीय काव्य विमर्श – सममूर्ति त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

५) पाश्चात्य काव्यशास्त्र – इतिहास, सिद्धांत और वाद – डॉ. भगीरथ मिश्रा

❖❖❖❖

१.१

साहित्य के हेतू , साहित्य के प्रयोजन

इकाई की रूपरेखा :

१.१.० इकाई का उद्देश्य

१.१.१ प्रस्तावना

१.१.२ काव्य के हेतू

१.१.२.१ आधुनिक भारतीय विद्वानों के अनुसार काव्य के हेतू

१.१.२.२ पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार काव्य के हेतू

१.१.३ काव्य (साहित्य) के प्रयोजन

१.१.३.१ प्राचीन भारतीय विद्वानों द्वारा प्रस्तुत साहित्य प्रयोजन

१.१.३.२ आधुनिक भारतीय (हिन्दी के) विद्वानों के अनुसार साहित्य के प्रयोजन

१.१.३.३ पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार साहित्य का प्रयोजन

१.१.४ सारांश

१.१.५ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१.१.६ लघुत्तरी प्रश्न

१.१.७ संदर्भ पुस्तके

१.१.० इकाई का उद्देश्य

- इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी निम्नलिखित मुद्दों से अवगत होंगे |
- साहित्य के हेतू से अवगत होंगे |
- साहित्य प्रयोजन विषय की सम्पूर्ण जानकारी हासिल कर सकेंगे |

१.१.१ प्रस्तावना

साहित्य का उगम आदिकाल से ही माना जाता है वेद, उपनिषद, ग्रंथ आदि साहित्य के ही निगम है जो आज अपने विश्व व्यापी दीर्घ स्वरूप के साथ हमारे सामने प्रस्तुत है | साहित्य का स्वरूप विभिन्न विद्वानो के अनुसार, साहित्य के हेतू और साहित्य प्रयोजन का अध्ययन करना साहित्यअध्ययन की परिपाटी की दृष्टि से हमारे लिए अनिवार्य हो जाता है |

१.१.२ काव्य के हेतु

मनुष्य प्रायः जो भी कार्य करता है, उसके पीछे कोई न कोई हेतु छिपा होता है। हेतु का तात्पर्य यहां कारण से है। काव्य सृजन के पीछे भी कोई न कोई हेतु होता है। प्रयोजन और हेतु में अंतर होता है। हेतु बीज स्वरूप में होते है और प्रयोजन फल स्वरूप में। अर्थात काव्य निर्मिती के पीछे हेतु को ही प्रमुख तत्व के रूप में देखा जा सकता है। वे कौन से हेतु अथवा कारण हैं कि जिनकी प्रेरणा से कवि या लेखक नई सृष्टि की रचना करता है ? भारतीय एवं पाश्चात्य आचार्यों ने काव्यहेतु पर समग्र रूप से विवेचन किया है। जिसे हम निम्न अनुसार देख सकते है।

१.१.२.१ प्राचीन भारतीय विद्वानों के अनुसार काव्य के हेतु :

आचार्य भामह ने प्रतिभा को प्रमुख काव्य हेतु मानते हुए कहा है, कि कोई प्रतिभाशाली व्यक्ति ही काव्य रचना कर पाता है। काव्य सृजन के लिए प्रतिभा आवश्यक है। प्रतिभा एक शक्ति स्वरूप है, जो कवि में बीज स्वरूप में विद्यमान होती है। भामह के अनुसार काव्य और शास्त्र के अनवरत अध्ययन से व्युत्पन्न शक्ति भी काव्य हेतु है। अर्थात भामह व्युत्पत्ति और अभ्यास को महत्वपूर्ण मानते है। व्युत्पत्ति का तात्पर्य लोक शास्त्र तथा काव्य का निरीक्षण से है; जिससे ज्ञान प्राप्त होता है; अनुभव, योग्यता प्राप्त होती है। गुरू का सान्निध्य प्राप्त कर काव्यरचना का अभ्यास होता है। गुरु के मार्गदर्शन और संशोधन से काव्यरचना में निखार आता है।

आचार्य दंडी ने केवल प्रतिभा को ही काव्य हेतु के रूप में स्वीकार नहीं किया, बल्कि व्युत्पत्ति और अभ्यास को भी अनिवार्य माना है। दंडी प्रतिभा को जन्मजात और आवश्यक गुणों से युक्त मानते है। पर दंडी के अनुसार प्रतिभा के अभाव में व्युत्पत्ति एवं अभ्यास द्वारा काव्य सृजन हो सकता है। सरस्वती उपासना एवं अनवरत प्रयत्नों द्वारा काव्य सृजन संभव है। आचार्य वामन ने दंडी और भामह के मतों को सामने रखकर ही अपना मत निर्धारित किया है। अध्ययन, मनन, प्रयत्न, अभ्यास, काव्य कला के मर्मज्ञों से ज्ञान प्राप्त करना, अपनी ही रचनाओं की आलोचना, समीक्षा करना आदि को काव्य हेतु के रूप में स्वीकारा है। वामन काव्य हेतु को काव्यांग कहते है और क्रमशः लोक, विधा, प्रकीर्ण को काव्यांग मानते है। प्रकीर्ण के अंतर्गत वे छः तत्वों को स्वीकारते है।

आचार्य रुद्रट ने भी उपरोक्त काव्य हेतुओं को ही माना है। उनके अनुसार प्रतिभा के बल पर कवि में शब्द एवं उनके अर्थ के अवलोकन ही क्षमता आती है। व्युत्पत्ति के बल पर दोषपरिहार और काव्य तत्वों की उपादान शक्ति प्राप्त होती है, तो अभ्यास से काव्य सृजन में निखार आता है। रुद्रट प्रतिभा को ही शक्ति कहते है। आचार्य रुद्रट प्रतिभा के दो भेद मानते है - १. सहजा २. उत्पाद्या। जन्मजात प्रतिभा सहजा है, तो अध्ययन-अभ्यास से प्राप्त प्रतिभा उत्पाद्य है।

आचार्य आनंदवर्धन के विवेचन में काव्य हेतुओं की छाया देखी जा सकती है। इन्होंने दो काव्य हेतु स्वीकार किए है - १. प्रतिभा २. व्युत्पत्ति। इनका स्पष्ट मत है कि प्रतिभा कवि के कर्म-काव्य की व्युत्पत्ति आदि के अभावजन्य दोषों को भी छिपा लेती है।

आचार्य राजशेखर प्रतिभा और शक्ति को एक ही स्वीकार न कर शक्ति को एक अलग तत्व के रूप में महत्व देते है। बुद्धि के भी वे स्मृति, मति और प्रज्ञा यह तीन भेद मानते है। इनके अनुसार कवियों में प्रतिभा एक तो जन्मजात होती है और दूसरी आहार्या। कवियों के भी दो प्रकार उन्होंने किए है। एक सहज बुद्धिवालें और दूसरे आचार्य बुद्धिवाले। राजशेखर प्रतिभा के दो भेद मानते है।

१) कारयित्री प्रतिभा - कवि इस प्रतिभा से काव्य सर्जन करते है। अर्थात यह प्रतिभा कवि में होती है।

२) भावयित्री प्रतिभा -यह सहृदय में होती है। जिसके द्वारा सहृदय काव्य में छिपे भावार्थ को ग्रहण करते है।

आचार्य मम्मट ने शक्ति, व्युत्पत्ति और अभ्यास को काव्य हेतु माना है। काव्य रचना की शक्ति में लोक शास्त्र आदि का सम्य्क ज्ञान, काव्य मर्मज्ञों से प्राप्त शिक्षा, उसका अनवरत अभ्यास आदि को मूल कारण माना है। इनके अनुसार संस्कारगत शक्ति ही काव्यत्व का मूल बीज रूप है। जिसके अभाव में काव्य निम्न कोटि का बन सकता है। अध्ययन-मनन से प्राप्त ज्ञान व्युत्पत्ति है और निरंतर उत्कृष्ट काव्य रचना के लिए प्रयत्नशील रहना अभ्यास है।

परवर्ती आचार्यों में केशव मिश्र, हेमचंद्र, पंडितराज जगन्नाथ भी आचार्य भामह की तरह ही प्रतिभा को प्रमुख काव्य हेतु माना है। हेमचंद्र प्रतिभा के सहजा और औपाधिकी यह भेद मानते है। सहजा जन्मजात होती है, तो औपाधिकी कई प्रयत्नों से सिद्ध या प्राप्त होती है। आचार्य वाग्भट्ट भी प्रतिभा को काव्य का मूल हेतु तथा शेष को सहायक-संस्कारक हेतु मानते है। आचार्य जयदेव प्रतिभा को काव्य रचना का मुख्य हेतु और व्युत्पत्ति, अभ्यास को उसका सहायक हेतु मानते है।

इस विवेचन से तो स्पष्ट है कि काव्य सृजन के लिए संस्कृत के इन आचार्यों ने प्रतिभा, व्युत्पत्ति तथा अभ्यास इन तीनों के स्वरूप का विवेचन किया है। जिसे हम निम्नानुसार देख सकते है।

१.१.२.१.१ प्रतिभा :

काव्य हेतुओं में प्रतिभा को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। कुछ लोग प्रतिभा को सहज मानते है। मम्मट ने इसे शक्ति, बीज स्वरूप माना है। अभिनव गुप्त ने अपूर्व वस्तुओं के निर्माण की क्षमता रखनेवाली शक्ति को प्रतिभा कहा है। इस प्रतिभा को नवोन्मेषशलिनी भी कहा गया है। अर्थात वह नवीनता की आग्रही होती है। नयी भावनाओं की उद्भावना इसी के द्वारा होती है। वाग्भट्ट और हेमचंद्र इस नवनवोन्मेषशाली प्रज्ञा को प्रतिभा कहते है। तो आचार्य अभिनवगुप्त अपूर्व वस्तुनिर्माणक्षम प्रज्ञा को प्रतिभा कहते है।

१.१.२.१.२ व्युत्पत्ति :

मम्मट व्युत्पत्ति को निपुणता कहते है। 'लोकशास्त्र काव्याद्यावेक्षणाव्' अर्थात यह संसार के निरीक्षण से, नया काव्य और शास्त्रों के अध्ययन से प्राप्त होती है। कुछ आचार्यों ने व्युत्पत्ति

का अर्थ बहुलता से लिया है। बहुलता का तात्पर्य व्यापक ज्ञान से है। इनमें शास्त्रों का निरीक्षण, व्याकरण का अध्ययन, संसार का सम्यक ज्ञान अपेक्षित है। दंडी व्युत्पत्ति को श्रुत कहते है। लोक निरीक्षण से तात्पर्य चलाचल सृष्टि के उपादानों तथा क्रियाकलापों से है। शास्त्रों के अंतर्गत सामाजिक, धार्मिक तथा कला विषयक शास्त्रों का अध्ययन तथा काव्यादि के अंतर्गत काव्य तथा अन्य कलाओं का अध्ययन आता है।

१.१.२.१.३ अभ्यास :

काव्य रचना का बार-बार प्रयास करना अभ्यास कहलाता है। निरंतर अभ्यास काव्य रचना के शिल्पगत सौष्ठव में वृद्धि करता है। अभ्यास काव्य के बाह्यागों को सुघड़, आकर्षक तथा निर्दोष बनाने में सहायक होता है। अर्थात कह सकते हैं कि प्रतिभा, व्युत्पत्ति और निपुणता का मणिकांचन संयोग काव्य हेतु में सहायक होता है।

१.१.२.२ आधुनिक भारतीय विद्वानों के अनुसार काव्य के हेतु :

हिंदी के आचार्यों ने काव्यहेतुओं के वर्णन में कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। वे प्राय: संस्कृत और पाश्चात्य आचार्यों के मतों के घेरे में ही सीमित रहे हैं। रीति काल के आचार्यों ने संस्कृत काव्यशास्त्र को आधार बनाकर अपनी मान्यताएं दी है। आचार्य भिखारीदास के अनुसार प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास ही काव्य हेतु है। इन तीनों का सहयोग काव्य को 'मन रोचक' बना देता है।

आधुनिक हिंदी के विद्वानों में सर्वप्रथम मत डॉ. भगीरथ मिश्र का लिया जा सकता है। काव्य हेतु के पीछे वे दो कारणों को स्वीकार करते हैं - निमित्त कारण और उपादान कारण। इन्हीं को प्रेरक कारण भी कहा गया है। वे कहते है – "कवि की सामाजिक, पारिवारिक या वैयक्तिक परिस्थितियां तो उसकी प्रकृति है। जिससे उसे काव्यरचना की प्रेरणा प्राप्त होती है। जिसके अभाव में या तो काव्यरचना बिल्कुल नहीं होती अथवा होती भी है तो किसी अन्य रूप में।"

उपादान कारण के स्वरूप पर वे कहते है – "लोकशास्त्र का व्यापक ज्ञान सत्संग, श्रवण, मनन और अभ्यास के रूप में होता है।"

डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत मनुष्य की मननशीलता को प्रमुख काव्य हेतु मानते है। उनके अनुसार – "मननशील मानव मन जब सांसारिक वस्तुओं के संपर्क में आता है, तब व्यक्तिगत प्रकृति के अनुसार कुछ वस्तुओं को देखकर उसमें तन्मय हो जाता है। कुछ वस्तुओं के प्रति उसके हृदय में जिज्ञासा उत्पन होती हैं और कुछ के प्रति वह भयभीत होता है। तन्मयप्रधान मननशीलता ही साहित्य की जननी है।"

डॉ. नगेंद्र भी प्रतिभा, व्युत्पति और अभ्यास के साथ आत्माभिव्यक्ति को काव्य हेतु के रूप में स्वीकारते है।

१.१.२.३ पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार काव्य के हेतु :

पाश्चात्य साहित्य एवं काव्यशास्त्र में कहावत प्रसिद्ध है – "Poets are born and not made." अर्थात कवि उत्पन्न होते है, बनाये नहीं जाते। पाश्चात्य विद्वानों ने भी किसी न किसी रूप में प्रतिभा, व्युत्पति और अभ्यास को ही साहित्य हेतु स्वीकार किया है।

इस संबंध में सुकरांत ने अपने मत रखते हुए स्पष्ट किया है – "कविगण कविता इसलिए नहीं रचते कि वे बुद्धिमान हुआ करते है। वे इस कारण कविता रचते है कि उनमें एक विशेष प्रकृति अथवा प्रतिभा रहा करती है। जिससे उन्हें उत्साह मिला करता है।

प्लेटो कवि हृदय का होते हुए भी उसे काव्य और कला के प्रति कोई विशेष सम्मान नहीं था। इसी कारण उसने काव्य की उत्पत्ति मानसिक विक्षिप्तता की स्थिति में स्वीकार की है।

अरस्तु प्लेटो के दैवी प्रेरणा वाले सिद्धांतों को अस्वीकार कर काव्य प्रवृत्ति को मानव स्वभाव के साथ बद्ध करते है। अनुकरण की प्रवृत्ति को वह काव्य का मुख्य हेतु मानते हैं और संगीत, लय आदि को इसके उपक्रम।

नाट्यशास्त्र वादी जॉन ड्राइडन तथा जॉन्सन ने प्रतिभा को अधिक महत्व दिया है। स्वच्छंदतावादी विद्वानों ने कल्पना तथा भाव को अधिक महत्व दिया है।

लोकमंगल वादी विद्वानों ने ज्ञान और विवेक पर बल दिया है। कलावादी रचनाकार प्रतिभा को निरंकुश काव्य हेतु स्वीकार करते है।

मार्क्सवादी मान्यता के अनुसार शोषण से मुक्ति की कामना साहित्य की वृत्ति है। मनोविज्ञानवादी फ्रायड कला को काम से प्रेरित मानते है। उनके अनुसार काव्य सृजन से कामवासना तृप्त होती है। क्रोचे आत्माभिव्यक्ति को काव्य सृजन की प्रेरणा मानते है। कॉलरिज कवि के लिए प्रतिभा को अनिवार्य मानते है।

इस तरह भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों द्वारा बताए गए काव्य हेतुओं को देखा जा सकता है।

१.१.३ काव्य (साहित्य) के प्रयोजन

काव्य प्रयोजन का अर्थ होता है -काव्य के उद्देश्य। काव्य के आधार पर हमें जो प्राप्त होता है, उसे ही साहित्य प्रयोजन कहा जाता है। हर वस्तु का अपना विशिष्ट प्रयोजन होता है। साहित्य का सृजन एवं पठन-अध्ययन भी स्वद्देश्य होता है। सृजक तथा पाठक साहित्य से विशिष्ट प्रयोजन की अपेक्षा रखता है। देश-कल और युग प्रवृत्तियों, रुचियों एवं आवश्यकताओं के अनुरूप यह प्रयोजन बदलता रहा है। वैसे साहित्य का प्रयोजन उसके स्वरूप, उसकी प्रकृति पर निर्भर करता है। भारतीय तथा पाश्चात्य दृष्टिकोण अनुसार इसमें भिन्नता देखी जा सकती है। भारतीय दृष्टि आध्यात्मिक होने के कारण इसमें आध्यात्मिकता को आधार बनाकर काव्य प्रयोजन स्पष्ट किए गए है। तो पाश्चात्य दृष्टिकोण भौतिकवादी होने के कारण वह भौतिक सुखों को प्रधानता देते है।

समय-समय पर विद्वानों ने 'काव्य प्रयोजन' को अपनी सुविधा से परिभाषित करने का प्रयास किया है । इनमें कुछ विचार जो विद्वानों ने काव्य के प्रयोजन को लेकर दिए हैं, वो निम्नवत हैं –

१) "तुम जिन जानौ गीत है यह निज ब्रह्म विचार ।" - कबीरदास

२) "औ मन जानि कवित्त अस कीन्हा । मकु यह रहै जगत् महँ चीन्हा ।।

धनि सोई जस कीरति जासू । फूल मरै पै मरै न बासू ।।"- मलिक मुहम्मद जायसी

३) 'आनन्द की अनुभूति'और 'लोकहित की भावना' को प्रमुख काव्य-प्रयोजन माना है । - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

४) "जस संपत्ति आनंद अति दुरितन डारे खोइ । होत कवित तें चतुरई जगत राम बस होइ ।।" - कुलपति मिश्र

५) (i). "कविता का अन्तिम लक्ष्य जगत में मार्मिक पक्षों का प्रत्यक्षीकरण करके उसके साथ मनुष्य हृदय का सामंजस्य स्थापन है ।" आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

(ii). "मन को अनुरंजित करना उसे सुख या आनन्द पहुंचाना ही यदि कविता का अन्तिम लक्ष्य माना जाए तो कविता ही विलास की एक सामग्री हुई । …… काव्य का लक्ष्य है जगत और जीवन के मार्मिक पक्ष को गोचर रूप में लाकर सामने रखना ।" - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

६) "रहत घर न वर धाम धन, तरुवर सरवर कूप । जस सरीर जग में अमर, भव्य काव्य रस रूप ।।" - देव

७) "केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए । उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए ।" - मैथिलीशरण गुप्त

८) काव्य-प्रयोजन 'आनन्दानुभूति' होता है । - हरिऔध

९) "एक लहैं, तप-पुंजह के फल ज्यों तुलसी अरु सूर गोसाई । एक लहैं बहु संपत्ति केशव, भूषन ज्यों बरवीर बड़ाई ।।

एकन्ह को जसही सों प्रयोजन है रसखानि रहीम की नाई । दास कवित्तन्ह की चरचा बुधिबत्तन को सुख दै सब ठाई ।।" – भिखारीदास

१०) काव्य-प्रयोजन 'आत्मानुभूति' होता है । - नंददुलारे वाजपेयी

११) 'मानव हृदय में समाज के प्रति विश्वास उत्पन्न करना' । - महादेवी वर्मा

१२) काव्य-प्रयोजन 'आत्माभिव्यक्ति' होता है । - डॉ. नगेंद्र

१.१.३.१ भारतीय विद्वानों द्वारा प्रस्तुत साहित्य प्रयोजन :

संस्कृत के आचार्यों ने सृजक तथा पाठक दोनों को दृष्टि में रखते हुए काव्य प्रयोजन पर विचार किया है। इस दृष्टि से सर्वप्रथम आचार्य भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' का उल्लेख होता है। किंतु नाट्यशास्त्र में नाम के अनुरूप ही नाट्य प्रयोजनों की चर्चा की गई है। भरतमुनि के अनुसार -

"दुखार्तांना श्रमार्तांना शोकर्तांना तपस्विनाम, विश्रामजनन लोके नाट्यमेतद भविष्यति।"

अर्थात दुख, श्रम, शोक से आर्त तपस्वियों के विश्राम के लिए ही लोक में नाट्य का उद्भव हुआ है। अन्य एक स्थल पर काव्य प्रयोजनों की ओर इंगित करते हुए वे लिखते है, कि धर्म, यश, आयु वृद्धि, हित-साधन, बुद्धि-वर्धन एवं लोकोपदेश ही नाट्य प्रयोजन है। आचार्य भरत के बाद आचार्य भामह काव्यालंकार में दो बातों को आधार बनाकर काव्य प्रयोजन की चर्चा करते है - १. कवि एवं पाठक को आधार मानकर २. केवल कवि को आधार मानकर। कवि ओर पाठक को आधार मानकर काव्य प्रयोजन को स्पष्ट करते हुए वे कहते है -

"धर्मार्थ - काम-मोक्षेषु वैचभण्यं कलासुच, करोति कीर्ति प्रीतिच साधु काव्यनिवेषणम।"

अर्थात धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, कलाओं में विलक्षणता पाना, कीर्ति और आनंद की उपलब्धि ही काव्य का प्रयोजन है। जहां तक कवि का काव्य रचना के प्रयोजन से संबंध है, आचार्य भामह के अनुसार सत्काव्य की रचना करके कवि यश की अमरता प्राप्त करता है।

आचार्य दण्डी ने वाणी का महत्व प्रतिपादित करते हुए काव्य रचना के दो प्रयोजनों को स्वीकारा है - १. ज्ञान की प्राप्ति और २. यश की प्राप्ति।

आचार्य वामन ने कर्ता की दृष्टि से काव्य प्रयोजन पर प्रकाश डाला है। इन्होंने दृष्ट और अदृष्ट रूप में काव्य के दो प्रयोजन माने है। प्रीति या आनंद की साधना एवं कवी को कीर्ति प्राप्त कराना आदि को काव्य प्रयोजन माना है।

आचार्य रुद्रट ने 'यश' को अधिक महत्व दिया है। साथ ही वे अनर्थ का नाश और अर्थ की प्राप्ति को भी काव्य का प्रयोजन मानते है। अनर्थ के नाश से पाठक और श्रोता सुख-आनंद की प्राप्ति करता है।

आचार्य आनंदवर्धन आनंद की प्राप्ति को काव्य का प्रयोजन मानते है। दूसरे शब्दों में रसास्वादन को वे काव्य का प्रमुख प्रयोजन मानते है। आचार्य अभिनवगुप्त,आचार्य कुंतक आदि ने भी काव्य प्रयोजनों पर अपने विचार व्यक्त किए है। इन सभी में आचार्य मम्मट का दृष्टिकोण समन्वयवादी रहा है। वे कहते है – "काव्य यशसेर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये, सद्यःपरिनिर्वृत्तये कांतासम्मितयोपदेश युजे।"

अर्थात काव्य का प्रयोजन यश, अर्थ -प्राप्ति, व्यवहार की शिक्षा देना और जीवन के शिव पक्ष की रक्षा करना है। इसक साथ 'सद्यःपरिनिर्वृत्तये' अर्थात काव्य पढते ही शांति अर्थात आनंद की प्राप्ति होती है। तथा कांता (पत्नी) के समान उपदेश करना भी काव्य के प्रयोजन है।

भरतमुनि से लेकर आ.मम्मट तक के विद्वानों ने काव्य प्रयोजनों को जिस रूप में स्वीकारा है, वे निम्नानुसार है -

१.१.३.१.१ चर्तुवर्ग फलप्राप्ति :

जीवन की सफलता चार पुरुषार्थ -धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में मानी गई है । आदिकालीन साहित्य का प्रयोजन अर्थ प्राप्ति रहा है । धर्म, काम, तथा मोक्ष लेखक और पाठक दोनों के लिए है । अर्थ प्राप्ति सृजक निष्ठ प्रयोजन है । मध्यकालीन हिंदी साहित्य के पूर्वाद्ध अर्थात भक्तिकाल में धर्म और मोक्ष प्रयोजन के रूप में रहे है । तो उत्तरार्ध अर्थात रीतिकाल अर्थ के प्रति आग्रही रहा है । आधुनिक कालीन समाज धर्म और मोक्ष की अपेक्षा अर्थ और काम की ओर अधिक झुका हुआ दिखाई देता है । धनोपार्जन की इच्छा से रीतिकालीन कवियों ने राजदरबारों में आश्रय ग्रहण किया । कहते हैं कि बिहारी को प्रत्येक दोहें की रचना के लिए एक अशर्फी प्राप्त होती थी । आधुनिक युग में कवि सम्मेलनों में अनेक कवि अपनी कविताओं को गाकर, सुनाकर अच्छा-खासा धन पैदा कर रहे हैं । इस प्रकार कविता धनोपार्जन का माध्यम बन गई है । इसीलिए सम्भवतः मम्मट ने अर्थ प्राप्ति को काव्य प्रयोजनों में स्थान दिया है ।

१.१.३.१.२ यशप्राप्ति :

लगभग सभी संस्कृत आचार्यों ने यशप्राप्ति को साहित्य का प्रयोजन स्वीकार किया है । आचार्य रुद्रट ने इस प्रयोजन पर विशेष रूप से ध्यान दिया है । यश मनुष्य जीवन की उदात्त और सर्वोपरि कामना है । यश प्राप्ति की कामना हर कवि में होती है । अन्यथा प्रत्येक रचना के साथ कवि या लेखक अपना नाम न लिखता । आदिकाल, रीतिकाल के रचनाकार यश प्राप्ति के लिए लिखते रहे। भक्तिकाल के कवि भी यश कामना से रहित नहीं थे । आधुनिक रचनाकारों में भी यश कामना प्रबल रूप में विद्यमान है । प्राप्त यश, प्रशंसा और अधिक लिखने के लिए प्रवृत्त करती है । यश प्राप्ति को मम्मट ने काव्य का प्रमुख प्रयोजन माना है । काव्य रचना करके अनेक महाकवियों ने अक्षय यश प्राप्त किया है । कालिदास, सूरदास, तुलसी, बिहारी, प्रसाद जैसे अनेक कवि आज भी अमर हैं । तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में लिखा है :

“निज कवित्त केहि लाग न नीका । सरस होहु अथवा अति फीका ।।

जो प्रबन्ध कुछ नहिं आदरहीं । सो श्रम वाद बाल कवि करहीं ।।”

अर्थात् अपनी कविता किसे अच्छी नहीं लगती, चाहे सरस हो या फीकी, किन्तु जिस रचना को विद्वानों का आदर प्राप्त नहीं होता उस रचनाकार का श्रम व्यर्थ ही है ।

इससे यह ध्वनित होता है कि कवि की आकांक्षा होती है कि उसकी रचना विद्वानों के द्वारा सराही जाए अर्थात् यश प्राप्ति की कामना सभी कवियों में होती है ।

जायसी ने भी पद्मावत में यह स्वीकार किया है कि मैं चाहता हूं कि अपनी कविता के द्वारा संसार में जाना जाऊं ।

“औ मैं जान कवित अस कीन्हा । मकु यह रहै जगत मंह चीन्हा ।।”

रीतिकालीन कवि आचार्य कुलपति, देव और भिखारीदास ने भी अपने काव्य प्रयोजनों में यश प्राप्ति को विशेष स्थान दिया है। यह भी उल्लेखनीय है कि कवियों ने जिन राजाओं को अपनी कविता का विषय बनाया वे भी अमर हो गए। निष्कर्ष यह है कि यश प्राप्ति काव्य का प्रमुख प्रयोजन है।

१.१.३.१.३ व्यवहार ज्ञान :

आचार्य भरतमुनि, आ. भामह, आ. कुंतक तथा आचार्य मम्मट इस प्रयोजन का प्रतिपादन करते है। यह पाठक निष्ठ प्रयोजन है। यह प्रयोजन जीवन के वास्तविक सत्य को पहचानने के लिए एक नई दृष्टि प्रदान करता है। अपने भौतिक यथार्थ का साक्षात्कार भी वह कराता है। आचार्य मम्मट ने व्यवहार ज्ञान को भी काव्य का प्रयोजन माना है। रामायण आदि महाकाव्यों के अनुशीलन से पाठकों को उचित व्यवहार की शिक्षा प्राप्त होती है। संस्कृत में बहुत-सा साहित्य इसी प्रयोजन को ध्यान में रखकर लिखा गया था। पंचतन्त्र, हितोपदेश, नीतिशतक जैसे ग्रन्थ व्यवहार ज्ञान की शिक्षा देने के लिए लिखे गए। काव्य के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि हम कैसा व्यवहार करें। रामचरितमानस व्यवहार का दर्पण है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने चिन्तामणि में यह स्वीकार किया है कि काव्य से व्यवहार ज्ञान होता है: "यह धारणा कि काव्य व्यवहार का बाधक है, उसके अनुशीलन से कर्मण्यता आती है, ठीक नहीं। कविता तो भाव प्रसार द्वारा कर्मण्य के लिए कर्मक्षेत्र का और विस्तार कर देती है।"

१.१.३.१.४ अमंगल का नाश :

आचार्य मम्मट ने शिवेतरक्षतये के रूप में दैहिक और भौतिक अमंगल के नाश को साहित्य का प्रयोजन माना है। 'शिवेतर' का अर्थ है-अमंगल और 'क्षतये' का अर्थ है-विनाश। इसका तात्पर्य है कि काव्य अमंगल का विनाश करता है और कल्याण का विधान करता है। अपने युग और समाज को अनिष्ट से बचाने के लिए अनेक कवियों ने काव्य रचनाएं लिखी हैं। भक्तिकालीन कवि दैहिक, दैविक, भौतिक अमंगल के नाश के लिए साहित्य का सहारा लेता है। धार्मिक ग्रंथ रामचरितमानस भी ग्रंथ पठन के बाद फल की लंबी सूची प्रस्तुत करता है। वैसे आज के वैज्ञानिक युग में इस प्रयोजन की कोई विशेष प्रासंगिकता नहीं रही है। मात्र मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मानसिक असंतुलन से मुक्ति तथा सुधारवादी दृष्टि से सामाजिक अमंगजल का नाश साहित्यिक प्रयोजन कहे जा सकते है। कहा जाता है कि दिनकर जी ने युद्ध और शान्ति की समस्या को लेकर 'कुरुक्षेत्र' की रचना की और सम्पूर्ण संसार को शान्ति का सन्देश देते हुए युद्ध के अमंगल से बचाया है। कभी-कभी कवि व्यक्तिगत अमंगल को दूर करने के लिए भी काव्य रचना करता है। कहते हैं कि संस्कृत के मयूर कवि ने कुष्ठ रोग से मुक्ति पाने के लिए 'मयूर शतक' लिखा था, इसी प्रकार गोस्वामी तुलसीदास ने 'हनुमान बाहुक' की रचना बाहु रोग से मुक्ति पाने के लिए की थी। काव्य से पठन-पाठन से भी 'अमंगल का विनाश' होता है। अनेक लोग रामचरितमानस, दुर्गा सप्तशती और गुरु ग्रन्थ साहब का पाठ अमंगल के विनाश के लिए करवाते हैं।

१.१.३.१.५ आनंदप्राप्ति :

इसे भी लगभग सभी संस्कृत आचार्यों ने काव्य का प्रयोजन माना है। काव्यानंद द्विविध प्रयोजन है। सृजन की प्रक्रिया के दौरान सृजक तथा पठन-आस्वादन के दौरान पाठक इसके अधिकारी होते है। काव्यानंद को ही ब्रम्हानंद सहोदर कहा गया है। सृजनात्मकता का आनंद भौतिक सुखानुभूति से नितांत भिन्न होता है। इसलिए उसे अलौकिक आनंद भी कहा जाता है।

१.१.३.१.६ कांतासम्मितयोपदेशयुजे -

आचार्य मम्मट ने यह लेखकनिष्ठ प्रयोजन माना है। पत्नी के समान मधुर उपदेश देना भी काव्य का एक प्रयोजन है। मध्यकालीन एवं अन्य संतों की रचनाएं भी इसी कोटी में आती है। जिस प्रकार पत्नी का उपेदश सीधा न होकर मधुर भाषा में तथा प्रच्छन्न रूप में होता है, उसी प्रकार साहित्यकार का भी उपदेश होता है। संक्षेप में भारतीय आचार्य आनंद-आल्हाद को साहित्य का प्रमुख प्रयोजन मानते है। तथा अपने युगीन साहित्य तथा परिवेश के अनुरूप साहित्य की प्रकृति के अनुकुल अन्य प्रयोजनों को भी समाविष्ट करने का प्रयास हुआ है।

१.१.३.१.७ आत्मशान्ति -

काव्य पढ़ने के साथ ही तुरन्त आनन्द का अनुभव होता है और परम शान्ति की प्राप्ति होती है। काव्य का रसास्वादन करने से अलौकिक आनन्द की अनुभूति होती है। वस्तुतः आनन्दोपलब्धि ही काव्य का प्रमुख प्रयोजन है। काव्य का रसास्वादन करते समय पाठक को समाधिस्थ योगी के समान अलौकिक आनन्द प्राप्त होता है। कुछ समय के लिए वह अपनी सत्ता को भूलकर काव्य के आनन्द में लीन हो जाता है। इसीलिए काव्यानन्द को 'ब्रह्मानन्द सहोदर' कहा गया है। काव्य की रचना करके कवि को भी यही आनन्द मिलता है और काव्य का रसास्वादन करके पाठक को भी ऐसे ही आनन्द की अनुभूति होती है। इस प्रकार काव्य का प्रयोजन कवि और पाठक दोनों से सम्बन्धित है। काव्य में डूबा हुआ मन साधारणीकरण की स्थिति में पहुंचकर रसमग्न हो जाता है और यही रसमग्नता परमशान्ति अर्थात् आनन्द प्रदान करती है। आचार्यों ने इसी कारण इस प्रयोजन को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानते हुए 'सकलमौलिभूत' प्रयोजन कहा है।

१.१.३.२ आधुनिक भारतीय (हिंदी के) विद्वानों के अनुसार साहित्य का प्रयोजन -

हिंदी के विद्वानों ने भी साहित्य के प्रयोजनों पर विस्तार से विचार किया है। भक्तिकालीन भक्त कवियों की रचनाओं में भी साहित्य प्रयोजनों की ओर संकेत किया गया है। संत कबीर लोकमंगल के समर्थक रहे है। तुलसीदास की रचनायें 'स्वांत: सुखाय' रही है। अर्थात आनंद और लोकमंगल उनका काव्यप्रयोजन रहा है। सूरदास तथा अन्य कृष्ण भक्त कवि आनंद को अधिक महत्त्व देते है। रीतिकालीन कवियों ने काव्य प्रयोजन के संबंध में कोई मौलिक उद्भावना व्यक्त नहीं की है। संस्कृत के काव्य शास्त्रीय मतों को ही उन्होंने दोहराया है।

आधुनिक काल के विद्वानों पर संस्कृत तथा पाश्चात्य विचारकों का प्रभाव दिखाई देता है। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी आनंद और ज्ञान प्राप्ति को काव्य प्रयोजन मानते है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने साहित्य प्रयोजन के रूप में लोकमंगल की भावना और आनंद तथा रस को माना है। कविवर अयोध्याप्रसाद सिंह ने सरसता, मुग्धता, ज्ञान, नित्युपदेश और आनंद को काव्य प्रयोजन माना है। कविवर मैथिलीशरण गुप्त मनोरंजन और उपेदश-ज्ञान को महत्व देते है। जयशंकार प्रसाद मनोरंजन और शिक्षा का काव्य प्रयोजन मानते है। छायावादी कवियों ने मनोरंजन तथा शिक्षा को साहित्य प्रयोजन माना है। प्रगतिशील रचनाकर प्रेमचंद के अनुसार साहित्य के तीन लक्ष्य है - परिष्कृति, मनोरंचन,उद्घाटन। अन्य प्रगतिशील रचनाकार गजानन माधव मुक्तिबोध ने साहित्य का उद्देश्य सांस्कृतिक परिश्कार माना है। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने लोकमंगल पर बल दिया है।

१.१.३.३ पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार साहित्य का प्रयोजन -

पाश्चात्य विद्वानों ने काव्य प्रयोजन की चर्चा वस्तुपरक दृष्टिकोण से की है। जीवन और समाज की व्यावहारिकताओं पर दृष्टि रखकर यह साहित्य प्रयोजन स्पष्ट किए गए है। साहित्य की उपयोगिता और साहित्य की कलात्मकता को ध्यान में रखकर इन प्रयोजनों को देखा जा सकता है।

१) यूनानी दार्शनिक प्लेटो लोकमंगल को साहित्य का प्रयोजन मानते है। वे साहित्य को उसी सीमा तक ग्राह्य मानते है, जिस सीमा तक वह राज्य और मानव को उपयोगी हो। प्लेटो के शिष्य अरस्तु ने साहित्य के दो प्रयोजन स्वीकार किए है। १. ज्ञानार्जन या शिक्षा २. आनंद

   रोमन आ. होरेस का दृष्टिकोण समन्वयवादी रहा है। उनके मतानुसार कवि का उद्देश्य या तो उपयोगितावादी होता है या फिर आल्हादमयी।

२) स्वच्छंदतावादी विद्वान-रचनाकारों ने आनंद प्रदान करना साहित्य का प्रमुख प्रयोजन माना है। इसमें कॉलरिज, वर्ड्सवर्थ आदि प्रमुख है।

३) स्वच्छंदतावादी विचारधारा के उपरांत यूरोप में लोकमंगलवादी विचारधारा का प्राबल्य रहा। रस्किन बांड, लियो, टाल्सटॉय, आर्नल्ड आदि रचनाकारों ने नीति के उपदेश के साथ आनंद को साहित्य का प्रयोजन माना है। वहीं स्विन बर्नर, ब्रेडले, ऑस्कर वाइल्ड, वॉल्टर पेटर काव्य प्रयोजन स्पष्ट करते हुए मानते है कि काव्य काव्य के लिए या कला कला के लिए होती है।

४) मनोविज्ञानवादियों ने साहित्य को दमित वासनाओं की अभिव्यक्ति माना है। इसलिए उनके अनुसार काव्य और कला का प्रयोजन मानसिक संतुलन प्रदान करना है, जिससे पाठक को मानसिक स्वास्थ लाभ प्राप्त होकार वह सुखी रहे।

५) मार्क्सवादी व्यक्ति को महत्व न देकर समाज को महत्व देते है। उनके लिए साहित्य का मुख्य प्रयोजन समाज कल्याण है। उनकी दृष्टि में श्रेष्ठ साहित्य वही है, जो व्यक्ति को नैतिक, सामाजिक, राजनैतिक शिक्षा देकर उसकी सुप्त चेतना को जगाकर उसे समाज का उपयुक्त अंग बनाने में सहायक हो।

इसके अतिरिक्त काव्य प्रयोजनों को पाश्चात्य विद्वानों निम्न रूप से भी स्पष्ट करने की चेष्टा की है। जिसके अनुसार - कला जीवन से पलायन है, कला जीवन में प्रवेश के लिए, कला सेवा के लिए, कला आत्मानुभूति के लिए, कला सृजन की आवश्यकता की पूर्ति के लिए और कला विनोद के लिए आदि। कुल मिलाकर पाश्चात्य विद्वानों ने आनंद तथा नीति उपदेश द्वारा लोकमंगल इन दो काव्य प्रयोजनों पर अधिक मात्रा में बल दिया है। आनंद के संदर्भ में कुछ विद्वान ज्ञानजन्य, भावजन्य तथा कुछ नीतिसापेक्ष आनंद का प्रयोजन स्वीकारते है।

इस प्रकार उपरोक्त मतों के निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि काव्य का सृजन निष्प्रयोजन नहीं होता।

१.१.४ सारांश

साहित्य पठन और लेखन व्यतिरिक्त साहित्य हेतु क्या है?

साहित्य प्रयोजन क्या है भारतीय और पाश्चात्य विद्वानोंद्वारा किस प्रकार इसे व्याख्यायित किया गया है यह सभी जानकारी और इस विषय के आन्तरिक और बाह्यज्ञान से विद्यार्थी साहित्य के सभी घटकों से उक्त इकाई के अध्ययन के माध्यम से अवगत हुए|

१.१.५ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) साहित्य हेतु और साहित्य प्रयोजन की विस्तृत व्याख्या कीजिए|

२) साहित्य प्रयोजन के संदर्भ में भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों के मत का विवरण दीजिए|

१.१.६ लघुत्तरी प्रश्न

१) काव्य हेतु क्या है ?

उत्तर : काव्य हेतु किसी कवि की वह शक्ति है, जिससे वह काव्य सृजन करता है|

२) काव्य हेतुओं के नाम लिखिए|

उत्तर : काव्य हेतु चार है – प्रतिभा, व्युत्पत्ति, अभ्यास और समाधि

३) संत कबीर और तुलसीदास के लिए काव्य प्रयोजन क्या है ?

उत्तर : संत कबीर और तुलसीदास के लिए आनंद और लोकमंगल उनका काव्य प्रयोजन रहा है। उत्तर : ७-८ वी शताब्दी में

४) व्यक्ति को महत्व न देकर समाज को महत्व देते है। उनके लिए साहित्य का मुख्य प्रयोजन समाज कल्याण है। किसकी विचारधारा है ?

उत्तर : मार्क्सवादी

५) लोकमंगल को साहित्य का प्रयोजन कौन मानते है ?

उत्तर : यूनानी दार्शनिक प्लेटो लोकमंगल को साहित्य का प्रयोजन मानते है |

१.१.७ संदर्भ पुस्तके

१) काव्य शास्त्र - भगीरथ मिश्र विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी.

२) साहित्य समीक्षा – रामरतन भटनागर, किताबमहल, इलाहाबाद

३) हिन्दी साहित्य समीक्षा – श्रीमूर्ति सुब्रह्मराय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रवास

४) भारतीय काव्य विमर्श – सममूर्ति त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

५) पाश्चात्य काव्यशास्त्र – इतिहास, सिद्धांत और वाद – डॉ. भगीरथ मिश्रा

❖❖❖❖

२

कला : स्वरूप और परिभाषा, कलाओं का वर्गीकरण

इकाई की रूपरेखा

२.० इकाई का उद्देश्य

२.१ प्रस्तावना

२.२ कला : स्वरूप एवं परिभाषा

२.२.१ कला का अर्थ

२.२.२ कला का स्वरूप

२.२.३ कला की परिभाषा

२.३ कलाओं का वर्गीकरण

२.३.१ दार्शनिक विचारधारा के अनुसार कलाओं का वर्गीकरण

२.३.२ पाश्चात्य मतों के आधार पर कलाओं का वर्गीकरण

२.३.३ विधागत आधार पर कलाओं का वर्गीकरण

२.३.४ व्यवहार आधारित वर्गीकरण

२.३.५ उपयोगिता के आधार पर कला का वर्गीकरण

२.४ सारांश

२.५ दीर्घोत्तरी प्रश्न

२.६ लघुत्तरीय प्रश्न

२.७ संदर्भ ग्रंथ

२.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी निम्न लिखित मुद्दों से अवगत होंगे।

कला के अर्थ, स्वरूप और परिभाषा का अध्ययन कर सकेंगे।

कला के वर्गीकरण को जान सकेंगे।

२.१ प्रस्तावना

प्रारंभिक दौर से ही कला मानवीय हृदय को आकर्षित और प्रसन्न करती है | जो कलात्मक शिल्प, कौशल्य की प्रक्रिया अनेक रूपों में हमारे सामने अभिव्यक्त करती है जैसे – नृत्य, संगीत, चित्रकारी, मूर्तिकला कविता आदि | इस प्रकार कला दृश्य, श्रव्य और अनुभावित रूप से हमें आनंद देती है और हमारी जीवन शैली को मधुर रम्य सुगम बनाने में अपनी भागीदारी निभाती है |

२.२ कला : स्वरूप एवं परिभाषा

२.२.१ कला का अर्थ:

अनादिकाल से ही कला के प्रति मानव के हृदय में स्वाभाविक आकर्षण रहा है । कला संस्कृति की सुन्दरतम् अनुभूति है, जो संस्कृति जितनी उदार होती है, उसकी कला में उतना ही सूक्ष्म सौन्दर्य सहज साकार होता है । उदात्तता की दृष्टि से प्राचीन भारतीय संस्कृति विश्व में श्रेष्ठ है । कला की अभिव्यक्ति में सामान्यतः तीन तत्व कार्य करते हैं - सौन्दर्य के प्रति मानव का स्वाभाविक आकर्षण और सौन्दर्य को स्वतः उत्पन्न करने की भावना । संसार की वस्तुओं, दृष्यों एवं आकृतियों का अनुकरण और उनकी यथार्थ प्रतिकृति करने की भावना। कलाकार के द्वारा अनुभूति भावनाओं को मूर्त रूप में अंकित करके दूसरों के लिए व्यक्त करने की प्रवृत्ति । प्रथम प्रकार की कला में सुन्दर आकृति ही सब कुछ है। कला के अर्थ को हम निम्न बिंदुओं के अंतर्गत समझ सकते हैं |

१) कला मूलत: संस्कृत का शब्द है। कला शब्द का प्रयोग संस्कृत साहित्य में अनेक अर्थों में हुआ है। 'कल' धातु से शब्द करना, बजना, गिनना, कड् धातु से मदमस्त करना, प्रसन्न करना, 'क' अर्थात आनन्द लाने वाले अर्थ में जैसे भिन्न-भिन्न धातुओं से व्युत्पत्ति स्वीकार की है।

वहीं अंग्रेजी में 'आर्ट' कहा जाता है । 'आर्ट' का सम्बन्ध पुरानी फ्रैन्च आर्ट और लैटिन 'आर्टेम' या 'आर्स' से जोड़ा गया, इसके मूल में 'अर्' (।त) धातु है, जिसका अर्थ बनाना, पैदा करना, या फिट करना होता है, और यह संस्कृत के 'ईर' (जाना, फेंकना, डालना, काम में लाना) से सम्बन्धित है।

लैटिन के आर्स का अर्थ संस्कृत के कला और शिल्प अर्थ के समान है, अर्थात कोई भी शारीरिक या मानसिक कौशल जिसका प्रयोग किसी कृत्रिम निर्माण में किया जाता है, इस कौशल को "आर्ट" से ही जोड़ा गया है। अंग्रेजी में कला शब्द का प्रयोग १३वीं शताब्दी में शुद्ध कौशल के लिये हुआ । १७वीं शताब्दी में कला का प्रयोग, काव्य, संगीत, चित्र, वास्तु आदि कलाओं के लिये भी होने लगा।

२) कला शब्द 'कल' धातु से बना हैं। कला का शब्दिक अर्थ हैं, जो सुन्दर यानि जो आनंद प्रदान करती हो अथवा जिसके द्वारा सुन्दरता आती हैं, वही कला हैं। कला से तात्पर्य रेखा आकृति, रंग, ताल तथा शब्द, जैसे-- रेखाचित्र, रंजनकला, मूर्तिकला, नृत्य, संगीत, कविता एवं साहित्य के रूप में मानव की प्रवृत्तियों का बाहारी अभिव्यक्ति हैं । कला न ज्ञान हैं, न

शिल्प हैं, न ही विद्या हैं, बल्कि जिसके द्वारा हमारी आत्म परमानन्द का अनुभव करती हैं, वही कला हैं। कुछ लोग कला शब्द का अर्थ 'सुन्दर' 'कोमल' 'मधुर' या 'सुख' लाने वाला मानते हैं। कुछ इसे 'कल्' धातु अर्थात् (शब्द करना, गाना-बजना, गिनना से संबंधित मानते हैं। कुछ अन्य लोग इसे 'कड्' धातु (मदमस्त करना, प्रसन्न करना से जोड़ने के पक्ष में हैं। इस प्रकार से देखे तो कला का अर्थ एक ऐसी कलात्मक शिल्प या कौशल की प्रक्रिया से युक्त अनुभूति से हैं जो सृजनात्मक, सुन्दर एवं सुख प्रदान करने वाली हो, वही कला हैं।

३) कला शब्द से तात्पर्य है स्पष्ट अभिव्यक्ति। 'कंलाति' अर्थात् सुख प्रदान करने वाली मधुर कृति भी कहलाती है। कला शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद के आठवें मण्डल में "यथा कलां यथा शफं" के रूप में प्रयुक्त हुआ भारत में प्राचीन काल में कला के लिए शिल्प शब्द का भी प्रयोग हुआ। भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में शिल्प और कला दोनों शब्दों का अलग-अलग प्रयोग किया। "न तज्जानं न तच्छिल्प न सा विद्या न साकला।"

२.२.२ कला का स्वरूप :

मानव जीवन के लिए कला एक दुर्लभ उपहार है, कला केवल एक आवाज़, एक दृश्य, एक मात्रा या प्रतिभा नहीं है, कला वह है जो न केवल आपको आनंद प्रदान करती है, बल्कि अपनी रूचि और सुझाव को एक आकार दे आपकी कला ही आपको कुछ भी सृजन करने में मदद करती है, इसके आलावा कला को एक उद्योग के रूप में भी स्वीकार किया जा सकता है। वैसे तो कला को मानव मन की अभिव्यक्ति को प्रकट करने का एक माध्यम माना गया है, जिसे व्यक्ति अपनी इच्छानुसार भिन्न - भिन्न स्वरूप देता है अर्थात कला को मानवीय भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति कहा गया है। कई विद्वानों ने 'कला को कल्याण की जननी कहा है।" उनका मानना है, कि "कल्पना के सौन्दर्यात्मक अभिव्यक्ति का नाम ही कला है। तथा कल्पना की अभिव्यक्ति अलग - अलग प्रकार से एव अलग - अलग माध्यमों द्वारा हो सकती है। यह अभिव्यक्ति जिस भी माध्यम एवं जिस भी प्रकार से हो, वही कला के अन्तर्गत आती है।

कुछ कलाविदों के अनुसार, श्रेष्ठ कलाकृति का जन्म अन्तः मन व चेतन मन दोनों के परस्पर सहयोग से ही होता है। ऐसी कला कभी अनैतिक नहीं हो सकती, क्योंकि उस कला में समाज के कल्याण व परोपकार की भावना सम्मलित रहती है। दूसरे शब्दों में कहें तो 'कला' हमारी कल्पना शक्ति तथा सृजन शक्ति से युक्त है। इसीलिए भारत में कला को 'योग - साधना' माना जाता है। सौन्दर्य व तीव्रतम् अनुभूति से आत्म - विभोर होकर ही कलाकार सृजन करता है। इस प्रकार की कला ही वास्तव में भाव - पूर्ण व रसपूर्ण होती है।

अतः कल्पना की सौन्दर्यात्मक अभिव्यक्ति का नाम ही कला है। आदिमानव काल से लेकर आज तक मानव की इस कला का विकास क्रम नहीं रुका है। अपितु यह देश, काल तथा परिस्थितियों के अनुसार आगे ही बढ़ता गया है। मनुष्य को जो भी मिला, उसने उसे ही सृजन का माध्यम बना लिया। जैसे -ताड़ पत्र, छाल, कपड़ा, गुफाएँ दीवारें, चट्टानें आदि।

प्राचीन भारतीय मान्यताओं में भी कला के लिए 'शिल्प' और कलाकार के लिए 'शिल्पी' शब्द का ही अधिक प्रयोग किया जाता था | कहा जाता है प्राचीन काल में इस प्रकार का कोई भी विभाजन नहीं था। उस समय ग्रीक और रोमन भाषा का 'आर्ट' शब्द को केवल

शिल्प के लिए ही प्रयुक्त किया जाता था। उसमें 'कला' शब्द की सौन्दर्य - गरिमा पृथक रूप से समाविष्ट नहीं थी।

उसके पश्चात १८वीं शताब्दी में सौन्दर्य - शास्त्रियों द्वारा 'शिल्प' और 'शिल्प' का विभाजन उपयोगी एवं ललित कला के रूप में किया गया और १९वीं शताब्दी के आते - आते 'शिल्प' शब्द में छिपा हुआ सौन्दर्य इतना प्रबल हो उठा कि उसने अपने पुराने युग्म 'ललित' को हटा देने पर भी वह अपने अर्थ को पूर्ण रूप से विख्यात करने लगा तथा सामान्य तौर पर ललित कला के लिए केवल मात्र कला शब्द का ही प्रयोग किया जाने लगा।

प्राचीन समयानुसार भारतीय साहित्य में कला के प्रति आध्यात्मिक दृष्टिकोण होता था। जिस पर कुछ विद्वानों ने टिप्पणि की है | आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार "प्राचीन भारतीय साहित्यों में कला को महामाया का चिन्मय-विलास कहा गया है। उन्होंने कला को महाशिव की आदिशक्ति से सम्बद्ध माना है।" ललिता - स्तवराज से ज्ञात होता है कि जब-जब शिव को लीला के प्रयोजन की अनुभूति होती है तब तब महाशक्ति रूपी महामाया जगत की सृष्टि करती है। अतः शिव की लीला सखि होने के कारण महामाया को 'ललिता' कहा गया है, और यह माना जाता रहा है कि इन्हीं ललिता के लालित्य से ही ललित कलाओं की सृष्टि हुई है।

अत: जहाँ कहीं भी सौन्दर्य प्रवृत्ति विद्यमान है, वहीं महामाया का यह लीला ललित रूप भी विद्यमान है। प्राचीन मत के अनुसार- ललित कलायें आनन्द की निधि हैं। माया के "पंच - कुंचुकों काल, नियति, राग, विद्या और कला में 'कला' भी एक है। इस प्रकार शैव विचारधारा में कला का दार्शनिक अर्थ में भी प्रयोग हुआ है।

कला के स्वरूप को हम उसके विभिन्न स्वरूपों एवं गुणों के आधार पर आसानी से समझ सकते हैं। इस बात को ध्यान में रखते हुए कला की कुछ विशिष्ट व्याख्याएं यहां दी गई है |

१) कला एक क्रिया हैं :

कला एक क्रिया हैं, जिस प्रकार से प्रकृति प्रति क्षण विभिन्न क्रियाएं करती हैं। जैसे-- चन्द्रमा का घटना-बढ़ना, फूलो का खिलना, सूर्य का निकलना, बादलों का बरसना, बिजली का चमकना, इन्द्र धनुष का बनना आदि। इसी प्रकार से मानव भी अनेक क्रियाएँ करता हैं जिनमे से कुछ विशेष कार्य जो कुशलता पूर्वक किये जाते हैं दूसरों को आकर्षित करते हैं। इसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि कला एक व्यापक शब्द है जिसका प्रयोग प्रकृति तथा मानव जीवन के विविध क्षेत्रों में होता हैं। किन्तु प्रकृति तो ईश्वरीय कला है जो मानवीय क्रियाओं से पृथक है जबकि मानव द्वारा निर्मित कलात्मक वस्तु या चित्र के निर्माण की एक रचना प्रक्रिया होती हैं जो उसकी कलात्मकता को निश्चित करती हैं तो इस विश्लेषण से यह स्पष्ट होता हैं कि, "कला वह मानवीय क्रिया है जिसका विशेष लक्षण, ध्यान से देखना, गणना अथवा संकलन, मनन, चिन्तन एवं स्पष्ट रूप से प्रकट करना हैं।"

२) कला एक तकनीक है :

कोई भी कलाकृति (चाहे वह चित्र हो, मूर्ति हो या कविता) के निर्माण के लिये उसके निर्माण में प्रयुक्त एवं उस सामग्री के प्रयोग की तकनीक को समझना अनिवार्य हैं। बिना उस

तकनीक को समझे उस कलाकृति का निर्माण नही किया जा सकता। जितना बेहतर हमें सामग्री के इस्तेमाल की तकनीक का ज्ञान होगा उतनी ही कुशलता से हम उसका प्रयोग पर पायेंगे और उतनी ही उत्कृष्ट वह कलाकृति होगी तो इस विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि, "कला एक विशेष तकनीकी क्रिया है जिसमें कलाकृति के निर्माण हेतु प्रयुक्त सामग्री की प्रयोगविधि को समझना अनिवार्य हैं।"

३) कला एक शिल्प है :

किसी सामग्री को काट-छांटकर जब कोई रूप दिया जाता हैं उसे शिल्प कहते हैं। इस प्रकार वह चाहे मूर्तिकला हो या वस्तु शिल्प, धातु शिल्प हो या वस्त्र शिल्प अथवा प्लास्टिक आर्ट सभी शिल्प की श्रेणी में ही आते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि "प्रत्येक प्रकार की कला के लिये किसी न किसी सामग्री को काट-छांट कर या तराश कर ही उसे कलाकृति का रूप दिया जा सकता है। कलाकृति निर्माण हेतु उसके लिये उपयुक्त सामग्री को काटने-छांटने या तराशने की क्रिया एवं उसकी कुशलता अनिवार्य हैं।"

४) कला एक प्रकार का कौशल है :

यह सर्वविदित है कि कोई भी कृति तभी कलाकृति कही जा सकती है जब वह विशेष कौशल द्वारा तैयार की गई हो तथा उसमें छन्द लयात्मक व्यवस्था हो। कलाकार का कौशल उसे कहा जाता है जिसमें कलाकार क्रिया, शिल्प एवं तकनीक के अतिरिक्त कृति को आकर्षित बनाने के लिये अपने मानसिक चिन्तन प्रक्रिया के द्वारा नवीनता लाने के लिए अनेक युक्तियाँ खोजता हैं। इससे स्पष्ट है कि, "कलाकृति को प्रभावशाली, नवीन एवं आकर्षक बनाने हेतु मानसिक चिन्तन-मनन एक अनिवार्य प्रक्रिया हैं।"

५) कला एक कल्पना है :

बुद्ध घोष के अनुसार, "संसार भर की जितनी कलाकृतियाँ हैं सब कल्पना की उपज हैं। प्लेटो भी यही मानते है उनके अनुसार कलाकृति में दैवीय प्रेरणा की ही भूमिका होती हैं। कलाकार अनेक ऐसे काल्पनिक चित्रों या मूर्तियों का निर्माण करता है जिनका अस्तित्व ही संसार में नही होता। देवता, ईश्वरीय अवतार, राक्षस, स्वर्ग, ये सब कल्पना ही तो हैं। यूरोपीय विद्वान भी यही मानते थे कि कलाकार नवीन कलाकृतियों का सृजन करके अपनी कल्पना को सन्तुष्ट करता हैं। लेकिन महान चित्रकार "लियानार्दो द विन्ची" (सबसे चर्चित कृति मोनालिसा) का विचार था कि कलाकार संसार के अनुभव के आधार पर ही कलाकृतियाँ बनाता है पर वह सृष्टि नहीं करता केवल पुनः सृष्टि मात्र करता है। वह इसी संसार से सामग्री लेता है, जो ईश्वर द्वारा निर्मित हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि, "कल्पना का आधार भी सांसारिक वस्तुएँ ही होती हैं। कलाकार कल्पना के द्वारा उन्हें पुनः संयोजित कर नवीन रूप देता हैं।"

६) कला एक ज्ञान है :

प्राचीन भारतीय भाषाओं में चौंसठ कलाओं का वर्णन किया गया है। उच्चतम ज्ञान से भी भिन्न इन कलाओं के ज्ञान की प्रक्रिया को माना गया हैं। ज्ञान के अभाव में तकनीकी का

प्रयोग भी असंभव हैं। मन और मस्तिष्क जब किसी भी तकनीकी, वस्तु, घटना, क्रिया आदि को पूर्ण विश्लेषित कर सत्य मान लेता है तभी इन क्रियाओं का ज्ञान प्राप्त होता हैं।

७) कला एक अभिव्यक्ति है :

विद्वानों का मानना है कि कला एक प्रकार की भावपूर्ण भाषा है, जो किसी विशेष मानसिक स्थिति को जगाने में सफल होती हैं। लियोनार्दो द विन्सी का कथन है कि कलाकार जिन आकृतियों की रचना करता है वे उसके आन्तरिक भावों पर आधारित होती हैं। इसका स्पष्ट यह हुआ कि कला के रूपों में कलाकार के मन के भावों की अभिव्यक्ति होती हैं। जिस प्रकार हम भाषा को माध्यम बनाकर अपने विचार दूसरों तक पहुँचाते हैं उसी प्रकार कलाकृति के द्वारा भी कलाकार अपने मन के विचारों को सम्प्रेषित करता हैं। कला एक प्रकार की भावपूर्ण भाषा हैं जो कलाकृतियों में अभिव्यक्त होती हैं। कला को कुछ विद्वानों ने सामाजिक स्वप्न कहा हैं। वस्तुतः यह कहा जा सकता है कि, "कला चाहे काल्पनिक हो या वास्तविक वस्तु को सादृश्य, उसके पीछे कलाकर की भावनाओं की अभिव्यक्ति ही मूल भूमिका का निर्वाह करती हैं।"

८) कला एक खेल है :

कई विद्वानों ने कला को क्रीड़ा की संज्ञा दी हैं। इसी संदर्भ में हर्बट रीड कहते है कि, "जब हमारी अनेक इच्छाएँ, अनुभूतियाँ विचार और संवेदनाएँ तत्काल अभिव्यक्त नही हो पाती है तो तनाव उत्पन्न होता हैं, खेल ही इस तनाव से मुक्त होने का अवसर प्रदान करता हैं।"

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि, "कलाकार अपनी संवेदनाओं एवं तनावों को दूर करने के लिए भी कला को माध्यम बनाता है और कला ही उसे स्वस्थ्य मानसिक जगत की तरफ ले जाती हैं।"

स्पष्ट है कि अनुभूति की सफल अभिव्यंजना मात्र कला नहीं है। पाशविक आवेश में दी गई गालियां क्रोध की सफल अभिव्यक्ति तो है, परन्तु उसे कलात्मक अभिव्यिक्ति नहीं कहा जा सकता। किंतु 'रामायण' के युद्ध प्रसंग में वाल्मीकि जब राम के क्रोध को व्यक्त करते हैं, तो यही क्रोध कलात्मक बन जाता है। क्योंकि यह क्रोध पशुस्तरीय स्वार्थ की सीमा से ऊपर उठा हुआ है। कलाकार के लिए पाश्विक स्वार्थ की सीमा से ऊपर उठना अत्यंत आवश्यक है और इसी बिंदु पर उसमें सामाजिकता का उदय होता है। कल इसी भावना का पुरस्कार है। कला-सृजन के मूल में एक महत्वपूर्ण तत्व विद्यमान रहता है। कलाकार जिस जीवनानुभव का अविष्कार अपनी कलाकृति में करवाना चाहता है, उस विषय में उसके अंत:करण में गहरी सह-अनुभूति होनी चाहिए। यही नहीं, अपितु कलाकृति के सृजन की तीव्र ललक भी उसमें विद्यमान रहनी चाहिए। कलात्मक का उत्कट अविष्कार करने वाली कलाओं को ही ललित कला कहा जाता है।

२.२.३ कला की परिभाषा

कला एक दर्शन है। सबसे बड़ी बात है कि उसमें रहस्य है। रहस्य के तत्व हैं। कला में थोड़ा बोलना है तो थोड़ा चुप भी रहना है। यानी एक स्पेस भी चाहिए। इसके साथ-साथ रंगों का ड्रामा है। हैरान कर देने वाली तासीर है। रंग-संयोजन एवं आकृति-संयोजन भी हैरान करने

वाली होनी चाहिए। अंतत: अंतर्मन के अनुभवों एवं भावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम कला है। कला के सौन्दर्य में अनेकों कलाविदों ने अपने-अपने मत प्रस्तुत किये है, जो कि भिन्न-भिन्न है। कला को एक निश्चित परिधि में बांधना कठिन ही नहीं नामुमकिन भी है। कला संस्कृति, मानव जीवन एवं साहित्य तीनों के लिए बेहद महत्वपूर्ण है। कला के बिना ये सभी निष्प्राण से हो जाएंगे। कला ही है जो जीवन में सृजन को आधार एवं आकार प्रदान करता है। कला का किसी भी परिभाषा के दायरे में बांधा नहीं जा सकता। लेकिन विभिन्न विद्वानों द्वारा समय-समय पर कला की अनेक परिभाषायें दी गई हैं। उनमें से कुछ मुख्य परिभाषाएं निम्नलिखित हैं -

भारतीय विद्वानों के अनुसार-

१) "कला आत्मा का ईश्वरीय संगीत हैं।" - महात्मा गाँधी

२) "कला में मनुष्य स्वयं अपनी अभिव्यक्त करता हैं।" - रवीन्द्रनाथ टैगोर

३) "ईश्वर की कृतज्ञ-शक्ति का मानव द्वारा शारीरिक तथा मानसिक कौशलपूर्ण निर्माण, कला है।" - जयशंकर प्रसाद

४) "कला में मनुष्य अपनी अभिव्यक्ति करता हैं।" - डॉ. भोला शंकर तिवारी

५) "जिस अभिव्यंजना में आन्तिरक भावों का प्रकाशन तथा कल्पना का योग रहता है, वह कला है। सभी परिस्थितियों में कलात्मक क्रिया एक समान ही होती है। केवल माध्यम बदल जाते हैं।" - डॉ. श्याम सुन्दर दास

६) "एक ही अनुभूति को दूसरे तक पहुँचा देना ही कला है।" - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

७) "कला आंतरिक ऊर्जा है। ईमानदारी से देखें तो कला पूर्णत: निजी और अंतरमन की अभिव्यक्ति होती है।" - माधवी पारेख

८) "जीवन-अनुभव एवं जीवन-दर्शन का निचोड़ कला है।" - अपर्णा कौर

९) "यह समस्त विश्व ही कला है जो कुछ देखने, सुनने तथा अनुभव करने में आता है, कला है।" - श्री मोहनलाल महतो वियोगी

१०) "कला सौंदर्यमय प्रदर्शन है। कला आनंद, प्रसन्नता और सुख का स्त्रोत है। कला के द्वारा मनुष्य के भाव साकार (मूर्तिमान) बन जाते हैं। कला व्यक्तिगत दृष्टि से कलाकार की परम देन है। कला किसी भी जाति की, किसी खास समय की देन है।" - आनंद कुमार स्वामी

११) "कला भावों का पृथ्वी पर अवतार है।" - वासुदेवशरण अग्रवाल

१२) "कला अभिव्यक्ति की कुशल शक्ति है।" - मैथिलीशरण गुप्त

पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार-

१) "कला हृदय में दबी हुई वासनाओं का व्यक्त रूप है" अर्थात हम जिन बातों को संकोचवश व्यक्त नहीं कर पाते हैं, उन्हें कला के माध्यम से नि:संकोच व्यक्त कर देते हैं।" - फ्रायड

२) "कला वही है जैसा हर एक उसे जानता हैं।" - क्रोचे

३) "कला अनुकरणीय हैं।" - एरिस्टाटिल

४) "कला सत्य की अनुकृति हैं।" - प्लेटो

५) "कला, ईश्वरीय कृति के प्रति मानव के आलाद की अभिव्यक्ति हैं।" - रस्किन

६) "कला एक मानवीय क्रिया हैं जिसमें एक व्यक्ति जागरूक अवस्था में वाद्य प्रतीकों के माध्यम से, अपनी उन भावनाओं को जिनमें वह जी रहा होता हैं, दूसरों को संचारित करता है तथा दूसरे व्यक्ति भी उन भावनाओं से प्रभावित होते हैं एवं उनका अनुभव करते हैं।" - टॉलस्टाय

७) "सृष्टि एक दिव्य रचना है और कला पवित्रता की अभिव्यक्ति हैं।" - शापेनहावर

८) "सच्ची कलाकृति दिव्यता पूर्ण प्रतिकृति होती है।" - माइकेल एन्जेलो

९) "योग्यता द्वारा सम्पादित जीवन के किसी भी उस अलंकरण को जिसे वर्णनीय रूप प्राप्त हो 'कला' है।" - मैकविल जे. हर्सकोवित्स

१०) "I putall the things, I like in my picture" अर्थात मैं अपनी तस्वीर में उन सभी का अंकन करता हूँ जो मुझे पसंद हैं, कलाकार अपनी इच्छा की पूर्ति में जिस उपाय का आश्रय लेता है, वही कला है। इसी प्रकार कला को मनुष्य की इच्छित इच्छाओं की पूर्ति का साधन माना है।" - पिकासो

११) "Art is the expression of Imagination." - पी. बी. शैली

- "कला मानव का सात्विक गुण है। एक सरल भाषा है, जो मानव जीवन के सत्यों को सौन्दर्यात्मक एवं कल्याणकारी रूप में प्रस्तुत करती है।" कोलिंगवुड

अन्य परिभाषाएं -

१) "प्राण तत्व 'रस' से परिपूर्ण रचना ही कला हैं।"

२) "कला एक विशेष तकनीकी क्रिया है जिसमें कलाकृति के निर्माण हेतु प्रयुक्त सामग्री की प्रयोगविधि को समझना अनिवार्य हैं।"

३) "कल्पना का आधार भी सांसारिक वस्तुएँ ही होती हैं। कलाकार कल्पना के द्वारा उन्हें पुनः संयोजित कर नवीन रूप देता हैं।"

४) "अभिव्यक्ति की कुशल शक्ति की कला है।"

५) “Although this isa universal humanactivity, art is one of the hardest things in the words to define” - ‘इन्साइक्लोपीडिया ऑफ लंदन’

६) “कला भावों की उस अभिव्यक्ति को कहते हैं, जो तीव्रता से मानव हृदय को स्पर्श कर सके।”

७) “कला एक मानवीय चेष्टा है, जिसमें एक मनुष्य अपनी अनुभूतियों को स्वेच्छापूर्वक कुछ संकेतों के द्वारा दूसरों पर प्रकट करता है।”

८) “कला एक व्यक्ति की रचनात्मक इच्छा की सुन्दर अभिव्यक्ती है। यह कल्पना की रचनात्मक प्रक्रिया के द्वारा हमें प्राप्त होती है। यह उन्होंने अपनी रचित पुस्तक कला के सिद्धान्त में लिखा है|”

९) ‘कला’ कल्पना की अभिव्यक्ति है।

१०) कला शब्द से तात्पर्य मनुष्य के मन की सच्ची भावनाओं और हृदय की गहराइयों में स्थित भावनाओ की सुंदर प्रस्तुति से है. मन स्थिति को माननीय क्रियाओं के द्वारा दर्शाना ही कला है|

इन सब परिभाषाओं से यह निष्कर्ष निकलता है कि कला शिवत्व की उपलब्धि के लिये सत्य की सुन्दर अभिव्यक्ति है, इसका सामान्य अर्थ सौन्दर्य एवं रूप की रचना करना है, इसमें जिस सौन्दर्य या रूप की रचना होती है, वही आनंद का श्रोत है। आनन्द सौन्दर्य का सहज फल और उसकी अन्तिम परिणति है। इस प्रकार कला सौन्दर्य की रचना है। सौन्दर्य रूप का अतिशय है, रूप अभिव्यक्ति का माध्यम है, और अभिव्यक्ति सम्पूर्ण सत्ता का आत्मनिवेदन है। इसी तरह किसी भी कला में रूप और रचना दोनों एक साथ कार्य करते हैं तो कलात्मक अभिव्यक्ति उजागर हो पाती है।

२.३ कलाओं का वर्गीकरण

कला मानव जीवन के लिए न केवल मनोरंजन अपितु भावाभिव्यिक्त एवं अर्थोपाजन का भी एक महत्वपूर्ण साधन है। कलाएं जहां हमारे जीवन को एक नवीन ऊर्जा प्रदान करती हैं, वहीं कलाकारों के लिए जीवन की मौलिक सुविधाएं उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण भूमिका भी निभाती हैं। हमें कला के अनेक रूप देखने को मिलते हैं, जिन्हें अंकों की सीमा में बांधा नहीं सकता अर्थात कलाओं का आंकिक निरूपण करना संभव नहीं है। हालांकि विद्वानों द्वारा आम जनमानस की सुविधा के लिए तथा प्रदर्शन एवं अनुभव के आधार कला को विविध आधार देते हुए विभाजित करने का प्रयास किया है। किसी एक विभाजन को केंद्र में रखकर विभिन्न कलाओं को सही-सही समझ पाना मुश्किल ही नहीं बल्कि असंभव है। क्योंकि कलाओं के वर्गीकरण में मतैक्य होना संभव नहीं है। वर्तमान समय में कला को मानविकी के अंतर्गत रखा जाता है जिसमें इतिहास, साहित्य, दर्शन और भाषा विज्ञान आदि भी आते हैं।

इस बात को ध्यान में रखते हुए विद्वानों द्वारा किए गए कुछ प्रमुख विभाजनों का उल्लेख किया गया है:

२.३.१ दार्शनिक विचारधारा के अनुसार कलाओं का वर्गीकरण -

दार्शनिक विचारधारा के अनुसार - कला का लक्ष्य आत्मा के स्वरूप का साक्षात्कार तथा परम तत्त्व की ओर उन्मुख होना है।

इस प्रकार प्राचीन भारत की शैव साहित्य से सम्बद्ध कला - चिन्तन पूर्णतया आध्यात्मिक रही है, लेकिन कुछ समय पश्चात् भारतीय परम्परा से कला की यह पवित्रता जाती रही है कुछ और समय पश्चात 'कामशास्त्र' व 'कोकशास्त्रों' में ही कला की अधिकांश चर्चा की जाने लगी तथा प्राचीन समय में कला के प्रति भारतवासियों का जो दृष्टिकोण था, उसे हम यहाँ की विभिन्न विस्तृत कला - सूचियों के माध्यम से ज्ञात कर सकते हैं। जो निम्न प्रकार से है

१) ललित विस्तार – ८६

२) प्रबन्ध कोष – ७२

३) कामसूत्र (वात्स्यायन कृत) – ६४

४) कालिका - पुराण – ६४

५) कादम्बरी – ६४

६) काव्य - शास्त्र (आचार्य दण्डीकृत) – ६४

७) अग्निपुराण – ६४

८) बौद्ध एवं जैन सम्प्रदाय के ग्रन्थ – ६४

वैसे अधिकतर सूचियों में कलाओं की संख्या ६४ ही है और यही संख्या सर्वमान्य होनी चाहिये। परन्तु यह संख्या विभाजन अत्यन्त विवादास्पद है।

२.३.२ पाश्चात्य मतों के आधार पर कलाओं का वर्गीकरण:

पाश्चात्य जगत में कला के दो भेद किए गए हैं - उपयोगी कलाएं तथा ललित कलाएं। परंपरागत रूप से निम्नलिखित सात को कला कहा जाता है।

१) स्थापत्य कला (Architecture)

२) मूर्तिकला (Sculpture)

३) चित्रकला (Painting)

४) संगीत (Music)

५) काव्य (Poetry)

६) नृत्य (Dance)

७) रंगमंच (Theater/ Cinema)

२.३.३ विधागत आधार पर कलाओं का वर्गीकरण:

आधुनिक काल में इनमें फोटोग्राफी, चलचित्रण, विज्ञापन और कॉमिक्स भी जुड़ गए हैं। उपरोक्त कलाओं को निम्नलिखित प्रकार से भी विभाजित कर सकते हैं-

१) साहित्य: काव्य, उपन्यास, लघु कथा, महाकाव्य आदि.

२) निष्पादन कलाएं (Performing Arts): संगीत, नृत्य, रंगमंच

३) पाक कला (Culinary Arts): बेकिंग, चॉकलेटरिंग, मदिरा बना

४) मीडिया कला: फोटोग्राफी, सिनेमैटोग्राफी, विज्ञापन

५) दृश्य कलाएं: ड्रॉइंग, चित्रकला, मूर्तिकला

२.३.४ व्यवहार आधारित वर्गीकरण:

व्यवहारिक गुणों के आधार पर कला को मुख्यरूप से दो भागों में बांटा गया है :

१) दृश्य कला

२) श्रव्य कला

१. दृश्य कला (देखने योग्य कलाएं) :

वे कलाएं जिनकी अनुभूति हम देख सकते हैं या कर सकते हैं, वैसी कलाओं को 'दृश्य कला' के अंतर्गत रखा गया है. दृश्य कला अर्थात देखने योग्य कलाओं में मुख्य रूप से नृत्युकला, शिल्पकला, मूर्तिकला एवं चित्रकला इत्यादि जैसी कलाओं का समावेश है.

२. श्रव्य कला (सुनने योग्य कलाएं) :

वह कला जिसे देखा नहीं जा सके और सिर्फ सुनकर अनुभव किया जा सके. उसे सुनने योग्य कला कहा जाता है. सुनने योग्य कला के उदाहरण काव्यकला, संगीत, गीत, सुरीली-ध्वनियां इत्यादि हैं |

२.३.५ उपयोगिता के आधार पर कला का वर्गीकरण

कला को ललित कला और उपयोगी कला के अधीन विभाजित किया गया है। ललित कलाओं के अंतर्गत संगीत, नृत्य, मूर्ति, चित्र और वास्तुकला ही आती है। कुछ विद्वान काव्य को भी ललित कला मानते हैं। इस प्रकार कला का क्षेत्र बहुत व्यापक प्रतीत होता है और वह जीवन दर्शन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रमुखता से व्याप्त है। कला का क्षेत्र व्यापक और विस्तृत है।

सब कुछ ही तो कला है, फिर किसको कला ना कहा जाए ? लेकिन उसकी व्यापकता के आधार पर कला का वर्गीकरण पर विचार करना आवश्यक है। कला की इतनी अधिक श्रेणियां और संख्याएं है कि कला के वर्गीकरण तथा विभाजन के रूप पर विद्वान भी एकमत नहीं है। कला को सामान्य रूप में अनेक विद्वान तथा विचारक विभाज्य नहीं मानते हैं, इनमें 'क्रोंचे' का नाम प्रमुख है।

समानत: कलाओं की संख्या ६४ मानी गई है, जो अटल है। ललित कला को संस्कृत साहित्य मैं चारु कला और उपयोगी कला को कारू कला का नाम दिया गया है। संस्कृत साहित्य मैं शिल्प शब्द का प्रयोग बहुत प्राचीन समय से किया जा रहा है, और भरतमुनि से पहले कला शब्द के स्थान पर शिल्प शब्द का ही प्रयोग किया जाता था। शिल्प के अंतर्गत उपयोगी और ललित दोनों प्रकार की कलाएँ आ जाती थी।

जीवन का ऐसा कोई कार्य नहीं था जो शिल्प के अंतर्गत न आ सकता हो। सभी प्रकार की कलाएं शिल्प के अंतर्गत ही आती थी। आधुनिक काल में इन शब्दों का सूक्ष्म रूप से अध्ययन एवं विवेचन किया गया और अब फाइन आर्ट, क्राफ्ट और कौशल को अलग-अलग अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। उपयोगी कला को भी कला का एक अंश माना गया है।

अन्य विचारक कला की केवल दो श्रेणियां मानते हैं -

१) उपयोगी कला

२) ललित कला

१) उपयोगी कला: आजकल प्रायः शिल्प एवं क्राफ्ट के कामों को कला शब्द से भी संबोधित किया जाता है, जैसे चर्म कला, काष्ठ कला, पुस्तक कला इत्यादि। वास्तव में अंग्रेजी साहित्य में कला के जो भेद प्रस्तुत किए गए हैं उनमें कला और उपयोगी कला दो भेद माने गए हैं। सभी प्रकार के शिल्प तथा क्राफ्ट उपयोगी कला के अंतर्गत ही आ जाते हैं। उपयोगी कला का उचित अर्थ यह है कि ललित कला के प्रयोग अथवा प्रभाव से किसी किसी क्राफ्ट अथवा शिल्प को और अधिक आकर्षक, काल्पनिक और मौलिक बनाया जाए, जैसे- सुडौल सुंदर, अलंकारिक बर्तन बनाना |

लकड़ी, प्रस्तर, चमड़े या धातु की आकर्षक वस्तुएं बनाना, साड़ियों पर बेल बूटी छापना अथवा कढ़ाई करना, तत्क्षण तथा कर्षण कार्य करना, आलेखन बनाना, पुस्तक सज्जा करना, मीनाकारी करना आदि। कोई भी कला या ललित कला जब जीवन- उपयोगी किसी भौतिक कार्यो में प्रयुक्त होती है तो वह उपयोगी कला बन जाती है और जब इनके द्वारा कोई उपयोगी वस्तु बनती है तो कोई भी कला अथवा ललित कला उपयोगी कला हो जाती है।

अंग्रेजी भाषा में कौशल के स्थान पर टेक्नीक शब्द का प्रयोग उचित माना जा सकता है। प्रत्येक कार्य को संपन्न करने की एक प्रणाली या तरीका अथवा टेक्नीक होती है। जीवन का सरल से सरल या साधारण से साधारण कार्य हो या रचना, निर्माण, या विज्ञान का कार्य हो उन सब में कौशल टेक्निक की परम आवश्यकता होती है। विभिन्न कलाओ, ललित कलाओं, शिल्प एवं करप्ट अथवा उपयोगी कला के कार्यों में विभिन्न प्रकार की टेक्नीक या कौशल की जरूरत होती है। कार्य को उचित प्रकार से करने की कार्य प्रणाली को टेक्नीक कहा जाता है और इसी को कौशल भी माना जाता है।

२) ललित कला: कला का क्षेत्र बहुत व्यापक है और उसी प्रकार कलाओं की संख्या भी सीमित नहीं है। कला जीवन की प्रत्येक क्रिया से संबंधित है परंतु ललित कला कलाओं का एक विशेष वर्ग है जिसमें छह विशेष कलाएं गिनी जाती है; जैसे -

१) चित्रकला २) मूर्तिकला ३) वास्तुकला ४) संगीत कला ५) काव्य कला ६) नृत्य कला.

ललित कलाओं में केवल उन कलाओं को ही माना जाता है, जिसके द्वारा किसी जीवन उपयोगी सामग्री अथवा वस्तु का निर्माण नहीं किया जाता है। ललित कलाओं का एकमात्र उद्देश्य केवल मानसिक या आत्मिक आनंद प्रदान करना होता है।

२.४ सारांश

उक्त इकाई में हमने कला विषयक सम्पूर्ण अध्ययन किया है | इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी कला, कला का अर्थ. स्वरूप परिभाषा, आदि विषय की सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त की है |

२.५ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) कला का अर्थ, स्वरूप एवं परिभाषा को वर्णित कीजिए |

२) कलाओं का वर्गीकरण किस प्रकार हुआ है सम्पूर्ण विवरण प्रस्तुत कीजिए |

२.६ लघुत्तरीय प्रश्न

१) कला मूलत: कौनसी भाषा का शब्द है ?

उत्तर : संस्कृत

२) कला शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग कहाँ मिलता है ?

उत्तर : ऋग्वेद

३) 'कला वही है जैसा हर एक उसे जानता है |' कला के संबंध में उक्त परिभाषा किस विद्वान ने दी है ?

उत्तर : क्रोचे

४) वह कला जिसे देखा नही जा सके, सिर्फ सुनकर अनुभव किया जाए... कौन सी कला कहलाती है ?

उत्तर : श्रव्य कला

५) साहित्य के चार महत्वपूर्ण तत्व है ?

उत्तर : विचार, भाव, कल्पना और शैली

२.७ संदर्भ ग्रंथ

१) कला की जरुरत- अनुवाद - रमेश उपाध्याय – राजकमल प्रकाशन

२) कला – हंस कुमार तिवारी

३) भारतीय कला का इतिहास – डॉ. भगवतशरण उपाध्याय

❖❖❖❖

२.१

काव्य कला की श्रेष्ठता, कला और साहित्य का सम्बन्ध

इकाई की रूपरेखा

२.१.० इकाई का उद्देश्य

२.१.१ प्रस्तावना

२.१.२ काव्य कला की श्रेष्ठता

२.१.३ कला और साहित्य का सम्बन्ध

२.१.४ सारांश

२.१.५ दीर्घोत्तरी प्रश्न

२.१.६ लघुत्तरीय प्रश्न

२.१.७ संदर्भ ग्रंथ

२.१.० इकाई का उद्देश्य

- इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी निम्न लिखित मुद्दों से अवगत होंगे |
- काव्य कला की श्रेष्ठता को समझेंगे |
- कला और साहित्य के सम्बन्ध की जानकारी हासिल करेंगे |

२.१.१ प्रस्तावना

कला आदि काल विभिन्न प्रकार से हृदय को आनंद प्रदान करती रही है | समय के साथ इसमें कई बदला व हुए लेकिन कला उद्देश्य पूर्ति में कभी पीछे नहीं रही | कला का संबंध साहित्य के साथ भी जोड़ा गया कई विद्वानों में कला श्रेष्ठ या साहित्य श्रेष्ठ इस विषय को लेकर दीर्घ अभ्यास हुए, कई विचारों की परिणीति हुई लेकिन कला और साहित्य में आपस में इतना अटूट रिश्ता है और दोनों का महत्व विचार कोंकी तराजू में समान पलड़े पर है यह सिद्ध हो गया है |

२.१.२ काव्य कला की श्रेष्ठता

काव्यकाल वह कला है जिसमे शब्दों का महत्त्व होता है | इसमें भी भौतिक वस्तुओ को महत्त्व नहीं दिया जाता है | जो भाव मन में उभरते है उन्हें कवि अपने कलम के द्वारा लिखते

है और श्रोता इन भावों और शब्दों के सही मायने समझ कर आनंद प्राप्त करता है | अरस्तू ने यद्यपि अपने गुरु प्लेटो की नैतिक एवं सामाजिक धारणा का खुले रूप में खंडन नहीं किया है, साथ ही कला मैं नैतिक तत्त्व तथा उपदेशात्मकता भी उन्हें अमान्य नहीं किया है, तो भी प्रसिद्ध कलासमीक्षक बूचर के मतानुसार अरस्तु ने ही पहले पहल कलाशास्त्र से नीतिशास्त्र को पृथक किया और बताया कि परिष्कृत आनंदानुभूति ही काव्यकला अथवा कला का चरम लक्ष्य होता है । रोम के प्रसिद्ध विचारक सिसरों ने शलीनता (डेकोरम) तथा उदात्तता (सब्लाइमनेस) को कला का प्रमुख प्रतिपाद्य निर्धारित किया है। लोंगिनुस (लांजाइनस) ने अपनी कृति 'पेरिइप्सुस' में कला को न केवल शिक्षा और मनोरंजन से भिन्न एवं श्रेष्ठ माना है बल्कि उसे संप्रेरणा के उच्च धरातल पर प्रतिष्ठित करके, उसके स्वतंत्र मूल्यांकन का परामर्श भी दिया है। लोंगिनुस के अनुसार काव्य तथा कला का मुख्य तत्त्व उदात्त (द्र.) है और भावना का उदात्तीकरण ही उनका प्रधान परिणाम होता है जिसका व्यक्ति से भी और समाज से भी सीधा संबंध रहता है। अत: अपने वक्तव्य और प्रतिपादन में लोंगिनुस निश्चित ही मध्यमार्गी हैं। डायोनीसिस तथा डिमेट्रियस प्रभृति अन्य अनेक रोमन विचारकों ने काव्य तथा कला के शैलीपक्ष पर ही विशेष जोर दिया है। वहीं हिन्दी में साहित्य की आलोचना का दृष्टिकोण बदला हुआ सा दिखलाई पड़ता है। प्राचीन भारतीय साहित्य के आलोचकों की विचार-धारा जिस क्षेत्र में काम कर रही थी, वह वर्तमान आलोचनाओं के क्षेत्र से कुछ भिन्न था। इस युग की ज्ञानसम्बंधिनी अनुभूति में भारतीयों के हृदय पर पश्चिम की विवेचनशैली का व्यापक प्रभुत्व क्रियात्मक रूप में दिखाई देने लगा है; किन्तु साथ-ही-साथ ऐसी विवेचनाओं में प्रतिक्रिया के रूप में भारतीयता की भी दुहाई सुनी जाती है। यह मानते हुए कि ज्ञान और सौन्दर्य-बोध विश्वव्यापी वस्तु हैं, इनके केन्द्र देश, काल और परिस्थितियों से तथा प्रधानतः संस्कृति के कारण भिन्न-भिन्न अस्तित्व रखते हैं। खगोलवर्ती ज्योति केन्द्रों की तरह आलोक के लिए इनका परस्पर सम्बन्ध हो सकता है। वही आलोक शुक्र की उज्ज्वलता और शनि की नीलिमा में सौन्दर्य बोध के लिए अपनी अलग-अलग सत्ता बना लेता है।

भौगोलिक परिस्थितियाँ और काल की दीर्घता तथा उसके द्वारा होने वाले सौन्दर्य-सम्बन्धी विचारों का सतत अभ्यास एक विशेष ढंग की रूचि उत्पन्न करता है, और वही रुचि सौन्दर्यअनुभूति की तुला बन जाती है, इसीसे हमारे सजातीय विचार बनते हैं और उन्हें स्निग्धता मिलती है। इसी के द्वारा हम अपने रहन-सहन, अपनी अभिव्यक्ति का सामूहिक रूप से संस्कृत रूप में प्रदर्शन कर सकते हैं। यह संस्कृति विश्ववाद की विरोधिनी नहीं; क्योंकि इस का उपयोग तो मानव-समाज में, आरम्भिक प्राणित्व-धर्म में सीमित मनोभावों को सदा प्रशस्त और विकासोन्मुख बनाने के लिए होता है। संस्कृति मन्दिर, गिरजा और मस्जिद-विहीन प्रान्तों में अन्तःप्रतिष्ठित हो कर सौन्दर्य-बोध की बाह्य सत्ताओं का सृजन करती है। संस्कृति का सामूहिक चेतनता से, मानसिक शील और शिष्टाचारों से, मनोभावों से मौलिक सम्बन्ध है। धर्मों पर भी इस का चमत्कार-पूर्ण प्रभाव दिखाई देता है।

काव्यमीमांसा से पता चलता है कि भारत के दो प्राचीन महानगरों में दो तरह की परीक्षाएं अलग-अलग थीं। काव्यकार-परीक्षा उज्जयिनी में और शास्त्रकार-परीक्षा पाटलिपुत्र में होती थी। इस तरह भारतीय ज्ञान दो प्रधान भागों में विभक्त था। काव्य की गणना विद्या में थी और कलाओं का वर्गीकरण उपविद्या में था। कलाओं का कामसूत्र में जो विवरण मिलता है उसमें संगीत ओर चित्र तथा अनेक प्रकार की ललित कलाओं के साथ-साथ काव्यसमस्या-पूरण

भी एक कला है; किन्तु वह समस्यापूर्ति (श्लोकस्य समस्या पूरणम् क्रीड़ार्धम् वादाधर्म् च) कौतुक और वादविवाद के कौशल के लिए होती थी। साहित्य में वह एक साधारण श्रेणी का कौशल मात्र समझी जाती थी। कला से जो अर्थ पाश्चात्य विचारों में लिया जाता है, वैसा भारतीय दृष्टिकोण में नहीं।

ज्ञान के वर्गीकरण में पूर्व और पश्चिम का सांस्कृतिक रुचिभेद विलक्षण है। प्रचलित शिक्षा के कारण आज हमारी चिन्तनधारा के विकास में पाश्चात्य प्रभाव ओतप्रोत है, और इसलिए हम बाध्य हो रहे हैं अपने ज्ञान-सम्बन्धी प्रतीकों को उसी दृष्टि से देखने के लिए। यह कहा जा सकता है कि इस प्रकार के विवेचन में हम केवल निरुपाय हो कर ही प्रवृत्त नहीं होते; किन्तु विचारविनिमय के नये साधनों की उपस्थिति के कारण संसार की विचार-धारा से कोई भी अपने को अछूता नहीं रख सकता। इस सचेतनता के परिणाम में हमें अपनी सुरुचि की ओर प्रत्यावर्तन करना चाहिए। क्योंकि हमारे मौलिक ज्ञान-प्रतीक दुर्बल नहीं हैं।

हिन्दी में आलोचना कला के नाम से आरम्भ होती है। और साधारणतः हेगेल के मतानुसार मूर्त्त और अमूर्त्त विभागों के द्वारा कलाओं में लघुत्व और महत्त्व समझा जाता है। इस विभाग में सुगमता अवश्य है; किन्तु इसका ऐतिहासिक और वैज्ञानिक विवेचन होने की संभावना जैसी पाश्चात्य साहित्य में है वैसी भारतीय साहित्य में नहीं। उनके पास अरस्तू से ले कर वर्तमान काल तक की सौन्दर्यानुभूति-सम्बन्धिनी विचार-धारा का क्रमविकास और प्रतीकों के साथ-साथ उनका इतिहास तो है ही, सबसे अच्छा साधन उनकी अविच्छिन्न सांस्कृतिक एकता भी है। हमारी भाषा के साहित्य में वैसा सामञ्जस्य नहीं है। बीच-बीच में इतने आभाव था अंधकार-काल हैं कि उनमें कितनी ही विरुद्ध संस्कृतियाँ भारतीय रंगस्थल पर अवतीर्ण और लोप होती दिखाई देती हैं, जिन्होंने हमारी सौन्दर्यानुभूति के प्रतीकों को अनेक प्रकार से विकृत करने का ही उद्योग किया है।

यों तो पाश्चात्य वर्गीकरण में भी मतभेद दिखलाई पड़ता है। प्राचीन काल में ग्रीस का दार्शनिक प्लेटो कविता का संगीत के अन्तर्गत वर्णन करता है; किन्तु वर्तमान विचार-धारा मूर्त्त और अमूर्त्त कलाओं का भेद करते हुए भी कविता को अमूर्त्त संगीत कला से ऊँचा स्थान देती है। कला के इस तरह विभाग करनेवालों का कहना है कि मानव-सौन्दर्य-बोध का सत्ता का निदर्शन तारतम्य के द्वारा दो भागों में किया जा सकता है। एक स्थूल और बाह्य तथा भौतिक पदार्थ के आधार पर ग्रथित होने के कारण भिन्न कोटि की, मूर्त्त होती है। जिसका चाक्षुष् प्रत्यक्ष हो सके वह मूर्त्त है। गृह-निर्माण-विद्या, मूर्त्तिकला और चित्रकारी, ये कला के मूर्त्त विभाग हैं और क्रमशः अपनी कोटि में ही सूक्ष्म होते-होते अपना श्रेणी-विभाग करती हैं।

संगीत-कला और कविता अमूर्त्त कलाएँ हैं। संगीत-कला नादात्मक है और कविता उस से उच्च कोटि की अमूर्त्त कला है। काव्यकला को अमूर्त्त मानने में जो मनोवृत्ति दिखलाई देती है वह महत्त्व उसकी परम्परा के कारण है। यों तो साहित्य कला उन्हीं तर्कों के आधार पर मूर्त्त भी मानी जा सकती है; क्योंकि साहित्य कला अपनी वर्णमालाओं के द्वारा प्रत्यक्ष मूत्तिमती है। वर्णमात्रृका की विशद कल्पना तन्त्रशास्त्रों में बहुत विस्तृत रूप से की गई है। अ से आरंभ हो कर ह तक के ज्ञान का ही प्रतीक अहं है। ये जितनी अनुभूतियाँ हैं, जितने ज्ञान हैं, अहं के, आत्मा के हैं। वे सब वर्णमाला के भीतर से ही प्रकट होते हैं। वर्णमालाओं के

काव्य कला की श्रेष्ठता, कला और साहित्य का सम्बन्ध

सम्बन्ध में अनेक प्राचीन देशों की आरम्भिक लिपियों से यह प्रमाणित है कि वह वास्तव में चित्र-लिपि है। तब तो यह कहना भ्रम होगा कि चित्रकला और वाङ्मय भिन्न-भिन्न वर्ग की वस्तुएँ हैं। इसलिए अन्य सूक्ष्मताओं और विशेषताओं का निदर्शन न कर के केवल मूर्त्त और अमूर्त्त के भेद से साहित्यकला की महत्ता स्थापित नहीं की जा सकती।

भारतीय उपनिषदों का प्राचीन ब्रह्मवाद इस मूर्त्त विश्व को ब्रह्म से अलग निकृष्ट स्थिति में नहीं मानता। वह विश्व को ब्रह्म का स्वरूप बताता है -

ब्रह्मैवेदमृतं पुरस्ताव् ब्रह्मपश्चादक्षिणतश्चोत्तरेण।

अधश्चोर्ध्वं च प्रसूतं ब्रह्मवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्॥

आगमों में भी शिव को शक्ति विग्रही मानते हैं। और यही पक्की अद्वैत-भावना कही गई है; अर्थात् - पुरुष का शरीर प्रकृति है। कदाचित् अर्द्धनारीश्वर की संश्लिष्ट कल्पना का मूल भी यही दार्शनिक विवेचन है। संभवतः पिछले काल में मनुष्य की सत्ता को पूर्ण मानने की प्रेरणा ही भारतीय अवतारवाद की जननी है।

काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है, जिसका सम्बन्ध विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से नहीं है। वह एक श्रेय-मयी प्रेय रचनात्मक ज्ञान-धारा है। विश्लेषणात्मक तर्कों से और विकल्प के आरोप से मिलन न होने के कारण आत्मा की मनन क्रिया जो वाङमय रूप में अभिव्यक्त होती है वह निःसन्देह प्राणमयी और सत्य के उभय लक्षण प्रेय और श्रेय दोनों से परिपूर्ण होती है। इसी कारण हमारे साहित्य का आरम्भ काव्यमय है। वह एक द्रष्टा कवि का सुन्दर दर्शन है। संकल्पात्मक मूल अनुभूति कहने से मेरा जो तात्पर्य है उसे भी समझ लेना होगा। आत्मा की मनन-शक्ति की वह असाधारण अवस्था जो श्रेय सत्य को उसके मूल चारुत्व में सहसा ग्रहण कर लेती है, काव्य में संकल्पात्मक मूल अनुभूति कही जा सकती है। कोई भी यह प्रश्न कर सकता है कि संकल्पात्मक मन की सब अनुभूतियाँ श्रेय और प्रेय दोनों ही से पूर्ण होती हैं, इसमें क्या प्रमाण है? किंतु इसीलिए साथ ही साथ असाधारण अवस्था का भी उल्लेख किया गया है। यह असाधारण अवस्था युगों की समष्टि अनुभूतियों में अंतर्निहित रहती है; क्योंकि सत्य अथवा श्रेय ज्ञान काई व्यक्तिगत सत्ता नहीं; वह एक शाश्वत चेतनता है, या चिन्मयी ज्ञान-धारा है, जो व्यक्तिगत स्थानीय केन्द्रों के नष्ट हो जाने पर भी निर्विशेष रूप से विद्यमान रहती है। प्रकाश की किरणों के समान भिन्नभिन्न संस्कृतियों के दर्पण में प्रतिफलित हो कर वह आलोक को सुन्दर और ऊर्जस्वित बनाती है।

उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट हो जाता है कि अपनी उपयोगिता, प्रभाव एवं सृजन प्रक्रिया के चलते तथा दृघकालिक उपलब्धता एवं व्यापकता के कारण काव्य कला अन्य कलाओं पर श्रेष्ठ साबित होती है।

२.१.३कला और साहित्य का संबंध

साहित्य का उसके रचयिता के व्यक्तित्व के घनिष्ठ संबंध होता है. साहित्य के चार तत्व माने जाते हैं -विचार, भाव कल्पना और शैली। साहित्यकार का व्यक्तित्व इन चारों ही तत्वों के अंतर्गत किसी ना किसी रूप में विद्यमान रहता है। साहित्यकार चाहे किसी पात्र की भावनाओं एवं अनुभूतियों का चित्रण एंव अभिव्यंजन करे, उनमें भी उसके निजी व्यक्तित्व

की छाप विद्यमान रहती है। इतना ही नहीं, वह जिन भावनाओं को अपने साहित्य के प्रमुखता देता है, वे वस्तुतः उसके व्यक्तित्व एवं जीवन की ही प्रमुख भावनाएँ होती हैं। साहित्य सृजन में अन्य कलाओं का प्रभाव हमेशा देखने को मिलता है। वहीं अन्य कलाओं में साहित्य का प्रभाव देखने को मिलता है। दूसरे शब्दों में कहें तो साहित्य कला अन्य कलाओं के साथ बेहद गहरे तक जुड़ी हुई है, जिसे किसी भी प्रकार से अलग नहीं किया जा सकता। अर्थात हमें साहित्य कला में अन्य कलाओं का एवं अन्य कलाओं में साहित्य कला का जो प्रभाव देखने को मिलता है, वह कोई संयोग नहीं अपितु सृजन की अनिवार्यता है। वैसे तो साहित्य का अन्य सभी कलाओं पर प्रभाव एवं उनसे संबंध देखने को मिलता है, लेकिन यह हम विषय की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए कुछ अन्य विशिष्ट कलाओं के साथ साहित्य कला के संबंध को समझेंगे |

१) वास्तुकला- मूर्तिकला और साहित्य कला का संबंध:उपकरणगत मात्राधिक्य के दृष्टिकोण से पहला स्थान वास्तुकला का है। इस कला से संबंधित शास्त्र को स्थापत्य शास्त्र कहा जाता है। इस शास्त्र को अथर्ववेद का उपवेद भी कहा जाता है। वास्तुकला में लंबाई, चौड़ाई और गहराई दिशासंबंधी तीनों आयाम होते हैं। मात्रा बहुलता के ही कारण यह कला एकदेशीय कला कही जाती है। इसे समान्यतया स्थानांतरित नहीं किया जा सकता। उपकरणों की दृष्टि से वास्तुकला के बाद मूर्तिकला का स्थान है। वास्तुकला के समान ही यह कला त्रिआयामी कला है। इसे सहजता से स्थलांतरित किया जा सकता है। इस कला का आधार पत्थर, धातु, मिट्टी इत्यादि होता है, जिसे मूर्तिकार एक विशिष्ट आकार प्रदान करता है। शरीर – सौंदर्य का साक्षात्कार इस कला का मुख्य प्रयोजन है। मूर्तिकला में वास्तुकला की तुलना में अधिक मानसिकता के कारण यह किसी एक ही क्षण और कुछ ही पदार्थों का दिग्दर्शन करा सकती है। जबकि साहित्य कला भिन्न – भिन्न स्थानों में होनेवाली और क्षण प्रतिक्षण परिवर्तनीय घटनाओं एवं परिस्थितयों का चित्रण करती है। मूर्तिकला में विशिष्ट भावाभिव्यक्ति की सुंदर अभिव्यक्ति की जा सकती है। स्थितिशील रूप में ही सौंदर्य का अंकन करना मूर्तिकला की विशेषता है। यह कला अत्यंत प्राचीन है। रूपगत सौंदर्य का विधान करने की प्रेरणा साहित्य को यहीं से प्राप्त हुई।

२) चित्रकला एवं साहित्य कला का संबंध: उपकरणों की दृष्टि से तीसरा स्थान चित्रकला का है। यह कला उपर्युक्त दो कलाओं की तुलना में अधिक सूक्ष्म कला है। इस कला में लंबाई और चौड़ाई तो होती है, पर गहराई नहीं हुआ करती। सप्तरंग चित्रकला के अभिव्यक्ति के माध्यम हैं। यही रंग चित्र को आकर्षक बनाते हैं। इस कला में माध्यम का कोई विशेष महत्व नहीं हुआ करता, बल्कि स्मरणशक्ति का महत्व हुआ करता है। चित्रकला में अधिक कुशलता की आवश्यकता होती है। काव्य की तरह चित्रकला में भी मनुष्य की मन:स्थिति, धारणा या सामाजिक दृष्टिकोण प्रतिबिंबित होता है। चित्रकला फोटोग्राफी की भांति पदार्थों यथावत रूप प्रस्तुत नहीं करती। चित्र में अंकित पदार्थों का केवल संवेदनात्मक महत्व नहीं; भावात्मक महत्व भी रहता है। अतएव स्पष्ट है कि इस कला में मूर्तता का अंश कम और मानसिकता का अंश अधिक रहता है। साहित्य में वस्तुचित्रण के साथ भाव- व्यंजना जितनी तीव्रता से होती है, उतनी चित्रकला में संभव नहीं है। प्राचीनकाल के काव्यों की पांडुलिपियों तथा आधुनिक कविता संग्रहों में मुद्रित चित्रों को देखकर साहित्य कला व चित्रकला के संबंध की घनिष्ठता पर ध्यान टिक जाना स्वाभाविक है। कला का मूल गुण उच्च कोटि का आनंद है। इन दोनों कलाओं से वह आनंद प्राप्त होता है। दोनों चाक्षुस कलाएं हैं तथा

सात्विक आनंद की अनुभूति कराती हैं। अंतर सिर्फ इतना है कि दोनों के उपकरण व माध्यम भिन्न-भिन्न हैं। काव्य में जो कार्य शब्दों द्वारा संपन्न होता है, चित्र में वही कार्य रंगों और रेखाओं के माध्यम से होता है। परन्तु साहित्य कला अपनी गत्यात्मकता के कारण अधिक सजीव और पूर्ण लक्षित होती है। लेकिन यह बात भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि साहित्य कला सूक्ष्म भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए चित्रकला से सहायता लेती आई है और आगे भी लेती रहेगी।

काव्य कला की श्रेष्ठता, कला और साहित्य का सम्बन्ध

३) संगीत कला और साहित्य कला का संबंध:संगीत कला का अन्य कलाओं की तुलना में साहित्य कला से बहुत घनिष्ठ संबंध है। हमारी साहित्यिक परंपरा का सुदीर्घ इतिहास इस तथ्य का साक्षी है। ये दोनों कलाएं काल-सापेक्ष्य हैं। संगीत कला का माध्यम ध्वनि तरंगे होती हैं, जबिक साहित्यिगत ध्वनि तरंगे विशिष्ट अर्थों के विशिष्ट प्रकार के ध्वनि संकेतों के रूप में आबद्ध होती हैं। कामशास्त्र के रचयिता वात्स्यायन ने संगीत कला को सर्वोत्कृष्ट कला कहा है। प्लेटो ने मानसिक विकास के लिए संगीत के महत्व को प्रतिपादित किया है। संगीत कला की महत्ता में इसी में है कि भाव के उन्मेष इसकी कुशलता अन्य सभी कलाओं से अधिक है। परंतु संगीत काव्य के समान विषयसंपन्न कला नहीं है, लेकिन ललित कलाओं में वह काव्य की निकटमत सखा है। संगीत के समान साहित्य का माध्यम भी ध्वनियां है। या यूँ कहें कि साहित्य का भी एक विशिष्ट संगीत हुआ करता है, जो छंद-विधान, अलंकार-विधान से उत्पन्न होता है। साहित्य की ध्वनियां (शब्द) सार्थक ध्वनि संकेतों के रूप में अभिव्यक्त होती हैं। प्लेटो ने तो साहित्य को संगीत का अंग मानकर उसका संगीत में ही समावेश कर दिया। प्राचीन भारतीय विचारकों ने इन दोनों कलाओं में अभेद तो नहीं माना, परंतु दोनों में प्राप्त समानताओं पर उन्होंने बल अवश्य दिया है। इसलिए उन्होंने इन दो कलाओं को 'सरस्वती के स्तनद्वय' के रूप में देखा है। ये दोनों कलाएं पूर्णरूपेण गतियुक्त कलाएं हैं। साहित्य - कला शाब्दिक संकेतों के आधार पर अपना अस्तित्व प्रदर्शित करती हैं। साहित्य की भाषा व्यंजनापरक हुआ करती है। इसलिए वह अन्य कलाओं की तुलना में कहीं अधिक मात्रा में विषय संपन्न होती है। साहित्य में रस, रूप, गंध आदि सभी संवेदनाओं की सक्षम अभिव्यक्ति हुआ करती है। प्रतिभा के संस्पर्श के कारण साहित्य में वर्णित वस्तु या प्रसंग इतने जीवंत व प्रभावी प्रतीत होने लगे लगते हैं कि जिसे देखकर हम सोच भी सकते है कि शेष सभी कलाओं की तुलना में यह कला सर्वोत्कृष्ट कला है। हीगेल इसी कारण इस कला को श्रेष्ठतम कला के रूप में स्वीकार करते हैं।

इस सारे विवेचन यह स्वयमेव स्पष्ट हो जाता है कि माध्यम उपकरणों में भिन्नता के बावजूद भी ये कलाएं परस्पर स्निग्ध सुदृढ़ रेशमी तंतुओं से घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई हैं और कलासर्जन व आस्वाद के स्तर पर परस्पर सहयोगिनी भी बनी हुई हैं।

२.१. ४ सारांश

उक्त इकाई में हमने कला विषयक सम्पूर्ण अध्ययन किया है | इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थीकाव्य कला की श्रेष्ठता,कला और साहित्य का सम्बन्ध आदि विषय की सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त की है |

२.१. ५ दीर्घोत्तरी प्रश्न

1.काव्य कला की श्रेष्ठता को अपने शब्दों में लिखिए |

2. कला और साहित्य में संबंध की विवेचना कीजिए |

२.१. ६ लघुत्तरीय प्रश्न

१) काव्य काल में किसे महत्त्व नहीं होता है ?

उत्तर :काव्य काल में भौतिक वस्तुओको महत्त्व नहीं दिया जाता है |

२) सबसे पहले किस कला समीक्षकने कलाशास्त्रसे नीतिशास्त्र को पृथक किया ?

उत्तर :अरस्तुनेही पहले पहल कला शास्त्रसे नीतिशास्त्र को पृथक किया

3) कौनसे विचारकोंने काव्य तथा कलाके शैली पक्षपर ही विशेष जोर दिया है ?

उत्तर :रोमन विचारकोंने काव्य तथा कला के शैली पक्षपर ही विशेष जोर दिया है।

4) वास्तुकला- मूर्तिकलाऔरसाहित्यकलाकासंबंधकौनसेशास्त्रसेमानाजाताहै ?

उत्तर :वास्तुकला- मूर्तिकला और साहित्यकला का संबंध स्थापत्यशास्त्र से माना जाता है|

5) संगीत कला का माध्यम क्या है?

उत्तर :संगीत कला का माध्यम ध्वनि तरंगे होती हैं

२.१. ७ संदर्भ ग्रंथ

१) कला की जरुरत- अनुवाद - रमेश उपाध्याय – राजकमल प्रकाशन

२) कला – हंस कुमार तिवारी

३) भारतीय कला का इतिहास – डॉ. भगवतशरण उपाध्याय

❖❖❖❖

३

काव्य के रूप
महाकाव्य, खंडकाव्य

इकाई की रूपरेखा

३.१ उद्देश्य

३.२ प्रस्तावना

३.३ महाकाव्य की परिभाषा (भारतीय मान्यताओं के अनुसार)

३.४ महाकाव्य की परिभाषा (पाश्चात्य मान्यताओं के आधार पर)

३.५ खण्डकाव्य : स्वरूप और विशेषताएँ

३.६ सारांश

३.७ दीर्घोत्तरी प्रश्न

३.८ लघुत्तरीय प्रश्न

३.९ संदर्भ ग्रंथ

३.१ उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य है :

- महाकाव्य की परिभाषा को भारतीय एवं पाश्चात्य मान्यताओं के अनुसार समझने हेतु |
- महाकाव्य की परिभाषा (पाश्चात्य मान्यताओं के अनुसार) समझने हेतु |
- खंण्डकाव्य के स्वरूप और विशेषताओं को समझने हेतु |

३.२ प्रस्तावना

किसी भी कार्य को करने के पीछे उसके कर्ता का कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता हैं | मानव की प्रत्येक प्रवृत्ति हेतु मूलक होती हैं | यही हेतु मनुष्य को कार्य में प्रवृत्त करता हैं | काव्य सर्जना के पीछे भी उसके सर्जक का कोई उद्देश्य अवश्य होता हैं | यही उद्देश्य काव्य का प्रयोजन कहलाता हैं, और इसी प्रयोजन से प्रेरित होकर वह काव्य की रचना करता हैं | काव्य के परम्परागत रूप से प्रबंध और मुक्तक दो प्रमुख भेद माने जाते हैं | प्रबंध के भी दो भेद किए गए हैं, महाकाव्य और खण्डकाव्य संस्कृत के आचार्यो ने गद्य और पद्य दोनों के रूप में मिश्रित विरचित काव्य को चम्पू काव्य नाम प्रदान किया हैं |

३.३ महाकाव्य की परिभाषा (भारतीय मान्यताओं के अनुसार)

महाकाव्य को अंग्रेजी में 'एपिक' कहा जाता हैं | महाकाव्य साहित्य की प्राचीन एवं बहुचर्चित विधा हैं | महाकाव्य का कलेवर भी विशाल होता हैं | जैसे रामायण और महाभारत | इसमें मानव जीवन का व्यापक चित्रण होता हैं | महाकाव्य महान चरित्र, महान उद्देश्य और गरिमामय उदात्त शैली से विभूषित होता हैं | इसमें पूर्वापर प्रसंग का परस्पर संबंध एवं तारतम्य रहना भी अत्यावश्यक होता हैं | महाकाव्य शब्द 'महत' और 'काव्य' दो शब्दों से मिलकर बना हैं | इसमें पहला शब्द 'विशेषण' और दूसरा 'विशेष्य' हैं | महाकाव्य शब्द में विशेष्य का अधिक महत्व होता हैं | अत: इस शब्द में भी 'काव्य' ही प्रमुख हैं और दोनों शब्दों का अर्थ होता हैं | बड़ा काव्य क्योंकि 'महत' से विशाल 'उत्कृष्ट' का भी भाव प्रकट होता हैं | काव्य के लिए 'महत' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम 'वाल्मिकि रामायण' में हुआ हैं | श्री राम ने अपनी कथा का वर्णन सुनने के बाद लवकुश से कहा कि इस विशाल आकार वाले काव्य के कर्ता कौन हैं ;

"किम प्रमाणमिद्म काव्यम का प्रतिष्ठा महात्मन : |

कर्ता काव्यस्य महत: क्वचासौ मुनिपुंगवः ||

इस श्लोक में यह तो स्वत: ध्वनित हैं कि इसमें किसी महान व्यक्ति के चरित्र की प्रतिष्ठा होती हैं |

महाकाव्य का स्वरूप : महाकाव्य के स्वरूप पर भारतीय और पाश्चात्य दोनों ही आचार्यों ने विचार किया हैं |

भारतीय आचार्यों के अनुसार :

क) आचार्य भामह के अनुसार : भामह ऐसे प्रथम भारतीय आचार्य हैं जिन्होंने महाकाव्य के लक्षणों पर विचार किया हैं | उसके अनुसार महाकाव्य –

१) महाकाव्य सर्गबद्ध होना चाहिए और महानचरितों से संबंध होना चाहिए |

२) महाकाव्य का आकार बड़ा होना चाहिए |

३) महाकाव्य ग्राम्य शब्द से रहित तथा अर्थ सौष्ठत्व संपन्न अलंकारयुक्त भी हो |

४) महाकाव्य सत्पुरुष आश्रित होना चाहिए |

५) वह मंत्रणा, दूत प्रेषण, अभियान, युद्ध नायक का अभ्युदय, पंच संधि, समन्वित हो |

६) महाकाव्य में चतुर्वर्ण्य धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष का वर्णन होने पर भी अर्थ निरुपण की प्रधानता होनी चाहिए |

७) महाकाव्य हमेशा लौकिक आधार प्रधान एवं सभी रसों से युक्त होना चाहिए |

८) महाकाव्य में नायक का प्रथम वर्णन किया जाना चाहिए, उसके बल, वेग, ज्ञान आदि का भी विस्तृत वर्णन होना चाहिए।

९) महाकाव्य में प्रति नायक का वर्णन बाद में होना चाहिए।

१०) इसमें नायक का वध बिल्कुल नहीं होना चाहिए।

११) महाकाव्य में यदि नायक को कथा के आरम्भ से अन्त तक न दिखाया जा सके या उसके अभ्युदय का वर्णन न हो तो उसे कभी नायक नहीं बनाना चाहिए।

ख) आचार्य दण्डी ने अपने चर्चित ग्रंथ 'काव्यादर्श' में कुछ नवीन तथ्यों की ओर जोड दिया हैं। जो इस प्रकार से हैं–

१) महाकाव्य के प्रारम्भ में आशीर्वाद, नमस्कार एवं वस्तु निर्देश की योजना भी होनी चाहिए।

२) विरहजन्य प्रेम, विवाह, कुमारोत्पति, विचार-विमर्श, राजदूतत्व, अभियान, युद्ध तथा नायक की विजय आदि का वर्णन अपेक्षित हैं।

३) महाकाव्य में प्राकृतिक चित्रण एवं सामाजिक विधि-विधानों का संयोजन भी अपेक्षित हैं।

४) महाकाव्य में नायक के उत्कर्ष के लिए प्रतिनायक के वंश तथा पराक्रम का वर्णन भी आवश्यक हैं, क्योंकि नायक का वास्तविक उत्कर्ष, गुणवान प्रतिपक्षी की ही पराजय में निहित हैं।

५) महाकाव्य में चातुर्वर्ण्य का विधान उसके संयोजन के साथ आवश्यक हैं।

६) महाकाव्य में नायक का उदात्त और चतुर होना भी आवश्यक है।

३.४ महाकाव्य के लक्षण –(पाश्चात्य मान्यताओं के आधार पर)

पाश्चात्य विद्वानोंने भी महाकाव्य के लक्षण कुछ इस तरह गिनाए हैं–

१) महाकाव्य सर्गबद्ध हो और इसमें कम से कम आठ सर्ग जरूर होना चाहिए। कथा के आधार पर ही सर्गों का नामकरण हो और सर्ग के अन्त में आगामी कथा की सूचना होनी चाहिए।

२) महाकाव्य का नायक देवता या उच्चकुल में उत्पन्न धीरोदात्त गुणों से संपन्न होना चाहिए।

३) महाकाव्य का कथानक ऐतिहासिक पौराणिक या लोकप्रसिद्ध होना चाहिए।

४) महाकाव्य का प्रधान रस श्रृंगार, वीर और शान्त होना चाहिए। अन्य रस गौण रूपों में आना चाहिए।

५) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में से किसी एक या अनेक का संबंध महाकाव्य के उद्देश्य से होना चाहिए |

६) महाकाव्य का आरंभ मंगलाचरण या आर्शीवचन से ही होना चाहिए |

७) महाकाव्य में दुष्टों की निन्दा और सज्जनों की प्रशंसा होनी चाहिए |

८) महाकाव्य का नामकरण कवि नायक नायिका या वृत्त के आधार पर होना चाहिए |

९) वर्णन की विविधता भी महाकाव्य में होनी अत्यावश्यक हैं | यह वर्णन भी चंद्र, सूर्य, रात्रि, सुबह, प्रकाश, अंधकार, पर्वत, नदी, झरने, पेड़-पौधे, समुद्र नगर, युद्ध, विवाह आदि अवसरों के अनुरूप ही होना चाहिए |

महाकाव्य के तत्व :

महाकाव्य के समस्त लक्षणों का समन्वय करने पर महाकाव्य के कुल सात तत्व हमारे सामने आते हैं | जिनका विवेचन निम्न प्रकार से किया गया हैं–

१) कथानक : महाकाव्य का कथानक इतिहास, पुराण और लोकप्रसिद्ध कथा के आधार पर होता हैं | इसकी कथा जीवन की पूर्ण झाँकी प्रस्तुत करती हैं | महाकाव्य की कथावस्तु का प्राण कोई घटना होती हैं, उसी घटना पर उसकी पूरी कथा आधारित रहती है | महाकाव्य की कथा आठ से अधिक सर्गों में संगठित होती हैं | कथा का आरम्भ मंगलाचरण, आशीर्वचन आदि से होता हैं | सर्ग के अन्त में आने वाली कथा की सूचना भी होती हैं |

२) चरित्र चित्रण : महाकाव्य का नायक देवता या उच्चकुलीन, धीरोदात्त, चतुर, वीर आदि गुणों से सम्पन्न होता हैं | इसका नायक धर्म का विकास और अधर्म का नाश करने वाला होता हैं | महाकाव्य में नायक के अलावा अन्य पात्रों का भी चित्रण होता हैं | नायक के सामने समान नायिका को भी सर्वगुण सम्पन्न, आदर्श और नारी धर्म का पालन करने वाली ही होना चाहिए | महाकाव्य में प्रतिनायक (खलनायक) भी होता हैं | इसके होने से ही महाकाव्य में संघर्ष मूलक घटनाओं का वर्णन होता हैं, और नायक के गौरव शक्ति आदि गुणों से भी परिचय होता हैं |

३) युगचित्रण : महाकाव्य में युग विशेष का सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत किया जाता हैं | अवान्तर कथाओं, विविध वर्णनों, भागों, समारोहों आदि के माध्यम से महाकाव्य में उस युग का समग्र चित्र खींचा जाता हैं | महाकाव्य में सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि सभी परिस्थितियों और भावनाओं का भी अंकन होना चाहिए | अत: हम यह कह सकते हैं कि महाकाव्य युग विशेष का दर्पण होता हैं |

४) रस भाव : महाकाव्य के विशेष कलेवर में सभी रसों का वर्णन आवश्यक हैं | शृंगार, वीर और शांत रसों में से कोई एक रस महाकाव्य का प्रधान रस होता हैं | अन्य रसों की स्थिति गौण रूप में रहती हैं | ये अन्य रस सहायक रूप में भी प्रयुक्त होते हैं | महाकाव्य में रसभाव की निरंतरता पर विशेष बल दिया जाता हैं |

५) **छन्द योजना :** महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग होता हैं, और सर्ग के अन्त में छन्द परिवर्तन होता हैं | छन्द चमत्कार वैविध्य या अद्भुत रस की निष्पत्ति के लिए एक ही सर्ग में अनेक छन्दों के प्रयोग को नकारा नहीं जा सकता हैं |

६) **भाषा शैली :** महाकाव्य की भाषा शैली गरिगामय और उदात्त होती हैं | संगीतात्मकता एवं गेयता से महाकाव्य की गरिमा में वृद्धि होती हैं | महाकाव्य की भाषा सहज, सरल, भावानुकुल और प्रभावोत्पादक होती हैं | कहीं-कहीं मुहावरे, लोकोक्तियों के कलात्मक प्रयोग भी महाकाव्य को रमणीय बना देते हैं | महाकाव्य की शैली अलंकृत होते हुए भी सहज होनी चाहिए |

७) **उद्देश्य :**महाकाव्य का उद्देश्य महान होता हैं | धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चर्तुवर्ग के फल की प्राप्ति को महाकाव्य का उद्देश्य स्वीकार किया गया हैं | असत्य पर सत्य की विजय, अधर्म पर धर्म की विजय, राष्ट्रभक्ति, नैतिक आदर्श और मानवतावादी मूल्यों की स्थापना को भी महाकाव्य का उद्देश्य माना जात हैं |

३.५ खण्डकाव्य का स्वरूप और विशेषताएँ

खण्डकाव्य, प्रबंधकाव्य का ही लघुरूप हैं | इसमें जीवन के किसी एक अंग घटना या प्रसंग का वर्णन होता हैं | यह वर्णन अपने आप में पूर्ण होता हैं | खण्डकाव्य में महाकाव्य की तरह सम्पूर्ण जीवन की कथा प्रस्तुत नहीं की जाती हैं | बल्कि उसमें किसी एक घटना या किसी एक पहलू की मार्मिक कथा प्रस्तुत की जाती हैं | खण्डकाव्य में जीवन की पूर्णता अभिव्यक्त नहीं होती हैं | यह प्रबंधकाव्य का ही एक भेद माना जाता हैं | संस्कृत आचार्यो ने खण्डकाव्य पर केवल छुटपुट चर्चा ही की हैं | चतुर्वर्ग में से फल, रसो में से एक रस के अपनाए जाने के कारण लघुकाव्य में खण्डकाव्य के आंतरिक गठन की झलक हमें प्राप्त होती हैं | आचार्य विश्वनाथ के अनुसार –

"खण्डकाव्य अवेत काव्यस्थ एकदेशानुसारि च |"

अर्थात खण्डकाव्य, महाकाव्य का एकदेशीय रूप होता हैं | खण्डकाव्य शब्द साहित्य जगत में नया नहीं हैं | इसका अस्तित्व संस्कृत काल से ही हैं, किन्तु इस विधा का नामकरण और इसका स्वरूप स्पष्ट रूप से आधुनिक काल में ही अधिक निश्चित हो पाया हैं | हिन्दी में उत्तरोत्तर विकास के साथ खण्डकाव्य में बहुत परिष्कार होता गया और आगे चलकर अत्याधिक साहित्यिक खण्डकाव्य रचे जाने लगे | वीरभावात्मक खण्डकाव्य और आधुनिक खण्डकाव्य के कथानक अनेक घटनाओं से भरे मिलते हैं, किन्तु उनमें प्रधान और अप्रधान घटना की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया गया | अपने छोटे से कलेवर में ही खण्डकाव्य की रोचकता और भी अधिक बढ़ जाती हैं |

खण्डकाव्य की प्रेरणा के मूल में अनुभूति का स्वरूप एक सम्पूर्ण जीवनखण्ड की प्रभावात्मकता से बनता हैं | प्रेरणा के बल पर जो रूप होता हैं, वही 'खण्डकाव्य' कहलाता हैं | खण्डकाव्य का कथानक कभी बहुत छोटा तो कभी बहुत बड़ा होता हैं | छोटे या बडे आकार से खण्डकाव्य की महत्ता नहीं ठहराई जा सकती, क्योंकि जीवन के किसी एक अंग को स्पर्श करने वाला खण्डकाव्य अपनी छोटी सी परिधि में भी चमकता नजर आता हैं |

संस्कृत काव्यशास्त्र में 'खण्डकाव्य' शब्द का प्रयोग सबसे पहले आचार्य विश्वनाथ ने अपने ग्रंथ 'साहित्य दर्पण' में किया था | उससे पूर्व आचार्यों के मस्तिष्क में 'खण्डकाव्य' की आकृति बड़ी धुँधली सी थी | आचार्य भामह, रुद्रट, दण्डी और आनन्दवर्धन ने उसका वर्गीकरण, काव्य महाकाव्य, काव्य शरीर, प्रबंध काव्य और, आख्यायिका, खण्डकाव्य, परिकथा, सकलकथा आदि नामों का उल्लेख किया हैं | आचार्य हेमचन्द ने भी श्रव्यकाव्य का विभाजन कथा, कथा आख्यायिका और चंपूकाव्य के रूप में किया | इससे यह स्पष्ट हो जाता हैं कि अधिकांश आचार्यों के दिमाग में खण्डकाव्य की कोई परिकल्पना ही नहीं थी , केवल रुद्रट और आनन्दवर्धन ने प्रकारान्तर से खण्डकाव्य के संकेत अवश्य दिए हैं | आगे चलकर आचार्य विश्वनाथ ने सही मायने में इसका वैज्ञानिक वर्गीकरण प्रस्तुत कर परवर्ती आचार्यों के लिए दिशा-निर्देशन का काम भी किया हैं | भारतीय साहित्यशास्त्र में आचार्य विश्वनाथ मील के पत्थर माने जाते हैं | खण्डकाव्य को परिभाषित करते हुए डॉ. भगीरथ मिश्र कहते हैं कि 'प्रबंधकाव्य' का दूसरा भेद खण्डकाव्य या खण्डप्रबंध हैं | प्राय: जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना या दृश्य का मार्मिक उद्घाटन होता हैं और अन्य प्रसंग संक्षेप में रहते हैं, इसमें भी कथा संगठन आवश्यक हैं | इसमें वस्तु वर्णन, भाववर्णन एवं चरित्र का ही चित्रण किया जाता हैं, पर कथा विस्तृत नहीं होती | जैसे जयद्रथ वध, पार्वती मंगल, मैथिलीशरण गुप्त कृत पंचवटी, निराला कृत 'तुलसीदास' और रामधारी सिंह दिनकर कृत्य रश्मिरथी आदि | डॉ. भगीरथ मिश्र जी की यह परिभाषा 'खण्डकाव्य' के सभी तत्वों से उचित परिभाषा हैं |

खण्डकाव्य के विषय में आचार्य बलदेव उपाध्याय जी की परिभाषा कुछ इस प्रकार से हैं– 'वह काव्य जो मात्रा में महाकाव्य से छोटा परन्तु गुणों में उससे कथमपि शून्यन हो खण्डकाव्य कहलाता हैं | महाकाव्य विषय प्रधान होता हैं, परन्तु खण्डकाव्य मुख्यत: विषयी प्रधान होता हैं, जिसमे लेखक कथानक के स्थूल ढाँचे में अपने वैयक्तिक विचारो का प्रसंगानुसार वर्णन करता हैं |'

डॉ. बलदेव उपाध्याय जी की खण्डकाव्य से संबंधित उपरोक्त परिभाषा, विषय पर अधिक प्रभाव डालती हैं, खण्डकाव्य के स्वरूप पर कम | उनका मानना हैं कि महाकाव्य विषय प्रधान होता हैं, और खण्डकाव्य मुख्यत: विषयी प्रधान, यह सर्वथा निर्दोष नहीं, हैं, क्योकि भाव और विचार प्राधान्य के आधार पर यह वर्गीकरण अत्यन्त स्थूल हैं | कोई भी खण्डकाव्य एक ही समय में भाव और विचार दोनों को साथ लेकर चल सकता हैं, यथा दिनकर की रचना 'रश्मिरथी', इसी तरह से दुष्यन्त कुमार की रचना 'एक कंठ विषपायी' भी मुख्यत: केवल विचार प्रधान खण्डकाव्य ही हैं |

'खण्डकाव्य' की परिभाषा देते हुए बाबू गुलाबराय जी लिखते हैं कि 'खण्डकाव्य' में 'प्रबंधकाव्य' का सा तारतम्य तो रहता हैं, किन्तु महाकाव्य की अपेक्षा उसका क्षेत्र सीमित होता हैं | उसमें जीवन की वह अनेक रुपता नहीं रहती जो कि महाकाव्य में होती हैं | उसमें कहानी और एकांकी की भाँति घटनाओं के लिए सामग्री जुटाई जाती हैं |'

डॉ. शकुंतला दुबे ने खण्डकाव्य के एक महत्वपूर्ण पक्ष की ओर संकेत किया हैं | 'खण्डकाव्य' का 'खण्ड' शब्दांश, यह नहीं बताता हैंकि खण्डकाव्य किसी काव्य रूप का खण्ड मात्र हैं | वस्तुत: यह शब्द अनुभूति के उस प्रभाव की ओर संकेत करता हैं, जो

खण्डकाव्य का आधार हैं | जीवन की अनुभूति जब अपने संपूर्ण रूप में कवि को प्रभावित करती हैं, तो खण्डकाव्य की रचना होती हैं |

खण्डकाव्य : विशेषताएँ

खण्डकाव्य की विशेषताएँ या उसके लक्षण कुछ इस तरह से हैं–

१) कलापक्ष की दृष्टि से महाकाव्य और खण्डकाव्य में उतना अन्तर नहीं हैं, जितना कि विषय की दृष्टि से |

२) खण्डकाव्य में नायक के खण्ड जीवन या उसके जीवन के किसी विशेष अवसर का क्रमबध्द रूप में वर्णन होता हैं |

३) खण्डकाव्य में देशकाल की घटना का अनुसरण होता हैं |

४) खण्डकाव्यों में भी सर्ग होते हैं, पर उनकी संख्या आठ से कम भी हो सकती हैं |

५) प्रत्येक सर्ग के लिए खण्डकाव्यों में छन्द का बंधन भी स्वीकृत होता हैं, किन्तु सर्ग के अन्त में छन्द का परिवर्तन आवश्यक नहीं होता हैं |

६) खण्डकाव्य में भी प्रकृति का चित्र उतारा जाता हैं |

७) खण्डकाव्य में भी मंगलाचरण की प्रस्तुति की जाती हैं; किन्तु इन सबका होना खण्डकाव्य के लिए आवश्यक नहीं हैं |

८) खण्डकाव्य का अस्तित्व संस्कृत काल से ही हैं, किन्तु इस विधा का नामकरण आधुनिक काल से ही अधिक निश्चित माना जाता हैं |

९) खण्डकाव्य में महाकाव्य के समान सर्ग बद्धता होती हैं, पर आकार एवं स्वरूप की दृष्टि से उसमें विभिन्नता होती हैं |

१०) खण्डकाव्य में मनोवैज्ञानिक चित्रण होता हैं, और कथावस्तु चरित्र चित्रण, संवाद, भावाभिव्यंजना अर्थात रस आदि की दृष्टि से वह महाकाव्य के समान होता हैं |

११) खण्डकाव्य की विशेषता यह भी हैं कि वह व्यक्ति के जीवन की घटना विशेष से संबद्ध होता हैं |

१२) खण्डकाव्य में किसी एक घटना परिस्थिति अथवा पहलू का वर्णन होने के कारण इतना अवसर नहीं होता कि जीवन का समग्रता से वर्णन किया जा सके |

१३) खण्डकाव्य के मुख्य कथा में भी बहुत उतार-चढाव नहीं होता हैं |

१४) खण्डकाव्य में कथा प्रसंगो का धार्मिक चयन,कथा संगठन,व्यवस्थित योजना, औत्सुक्य, स्वाभाविकता, भावाभिव्यंजना आदि गुण अपेक्षित होते हैं, और इन्हीं गुणों से कथावस्तु का निर्माण होता हैं |

१५) महाकाव्य की अपेक्षा खण्डकाव्य लघु अर्थात छोटा होता हैं |

१६) खण्डकाव्य की कथावस्तु जीवन के किसी एक पक्षीय घटना या परिस्थिति से संबद्ध होती हैं |

१७) खण्डकाव्य में पात्रों की संख्या बहुत कम होती हैं | उनके चरित्रों का व्यापक विवरण खण्डकाव्य में नहीं होता हैं |

१८) खण्डकाव्य में महाकाव्य के लक्षण संकुचित रूप में स्वीकार किए जाते हैं |

१९) खण्डकाव्य में जातीय जीवन का विस्तृत उल्लेख नहीं मिलता हैं |

२०) खण्डकाव्य का कथानक ऐतिहासिक पौराणिक या काल्पनिक भी हो सकता हैं |

२१) खण्डकाव्य में जीवन के किसी एक खण्ड रूप का विस्तृत वर्णन होता हैं |

२२) खण्डकाव्य में अनेक प्रासंगिक कथाओं की आवश्यकता नहीं हैं |

२३) खण्डकाव्य में एक ही छन्द का प्रयोग होता हैं |

२४) खण्डकाव्य आकार से भले ही छोटा होता हैं, किन्तु उसमें भावात्मक रोचकता को भी निरूपित किया जाता हैं |

३.६ सारांश

महाकाव्य में नायक के सम्पूर्ण जीवन की गाथा का वर्णन होता हैं, महाकाव्य का आकार बड़ा होने के कारण उसमें वर्णन के विस्तार हेतु अधिक अवकाश रहता हैं | इसमें कई नायको का प्रावधान होता हैं | इसका प्रधान रस श्रृंगार,वीर व शांत होता हैं | अन्य रस भी रहते हैं पर वे प्रधान रस के अंग रूप होते हैं | अधिकतम आठ सर्ग और कम से कम भी आठ सर्गो का ही विधान होता हैं | प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द का प्रावधान हैं, किन्तु प्रत्येक सर्ग का अंतिम छन्द उससे भिन्न होता हैं | कही-कही तो एक ही सर्ग में नाना छन्दों का प्रयोग होता हैं | जिस महाकाव्य के सर्ग में विविध छन्दों का प्रयोग होता हैं उसे 'आभा सोपम शक्ति' के नाम से जाना जाता हैं | 'रामचरितमानस' जैसे महाकाव्य में अनेक प्रभावशाली और अच्छे नाटकीय प्रसंग, संवाद दृश्य आदि दिखाई देते हैं | रामलीला में तो 'मानस' का ही अधिकतर प्रयोग होता हैं | महाकाव्य की दृष्टि से चन्द्रवरदायी कृत 'पृथ्वीराज रासो' और जायसी कृत 'पदमावत' तथा तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' को विशिष्ट स्थान प्राप्त हैं |

इसी तरह से खण्डकाव्य, प्रबंधकाव्य का लघुरूप हैं, इसमें जीवन के किसी एक अंग या घटना प्रसंगो का विशेष वर्णन होता हैं, और यह वर्णन अपने आपमें पूर्ण होता हैं | इसमें जीवन के किसी एक मार्मिक पक्ष का चित्रण सीमित रूप में होता हैं | इसका कथानक भी संक्षिप्त होता हैं | इसमें कथा, संगठन का होना अत्यावश्यक हैं | इसमें जीवन की पूर्णता अभिव्यक्त नहीं हैं | खण्डकाव्य में प्राय: प्रासंगिक कथाओं का अभाव सा होता हैं |

३.७ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) भारतीय मान्यताओं के आधार पर महाकाव्य को परिभाषित कीजिए |

२) महाकाव्य को पाश्चात्य मान्यताओं के आधार पर स्पष्ट कीजिए |

३) खण्डकाव्य के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए, उसकी परिभाषा लिखिए |

४) खण्डकाव्य की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए |

३.८ लघुत्तरीय प्रश्न

१) महाकाव्य को अंग्रेजी में क्या कहा जाता है ?

उत्तर – 'एपिक'

२) 'महत' शब्द का सर्वप्रथम उपयोग कहा हुआ है ?

उत्तर – वाल्मिकी रामायण

३) महाकाव्य के लक्षणो पर सर्वप्रथम किस भारतीय आचार्य ने महाकाव्य के लक्षणो पर अपने विचार प्रस्तुत किये है ?

उत्तर – आचार्य भामह

४) आचार्य दण्डी ने अपने कौन से ग्रंथ में महाकाव्य पर चर्चा की है ?

उत्तर – ग्रंथ – काव्यादर्श

५) 'खण्डकाव्य अवेत काव्यस्थ एकदेशानुसारि च' | उक्त परिभाषा खण्डकाव्य के विषय के विषय में किस विद्वान की है ?

उत्तर – आचार्य विश्वनाथ

३.९ संदर्भ ग्रंथ

१) काव्य के रूप – बाबू गुलाबराव

२) काव्य प्रदीप – श्री रामबहोरी शुक्ल

३) काव्य परिचय – राजेन्द्र प्रसाद श्रीवास्तव

४) काव्य के तत्त्व – आचार्य देवेंद्रनाथ शर्मा

❖❖❖❖

४

काव्य के रूप - मुक्तक काव्य, गीति काव्य

इकाई की रूपरेखा

४.१ उद्देश्य

४.२ प्रस्तावना

४.३ मुक्तक काव्य : स्वरूप

४.४ मुक्तक काव्य : विशेषताएँ

४.५ गीतिकाव्य : स्वरूप

४.६ गीतिकाव्य : विशेषताएँ

४.७ सारांश

४.८ दीर्घोत्तरी प्रश्न

४.९ लघुत्तरीय प्रश्न

४.१० संदर्भ ग्रंथ

४.१ उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य है :

- मुक्तक काव्य के स्वरूप को समझने की दृष्टि से |
- मुक्तक काव्य की विशेषताओं को समझने के लिए |
- गीतिकाव्य के स्वरूप को समझने में उपयोगी |
- गीतिकाव्य की प्रमुख विशेषताओं को समझने के लिए |

४.२ प्रस्तावना

मुक्तक काव्य प्रबंध काव्य से बिल्कुल विपरीत हैं, इसमें जीवन की विस्तृत झाँकी नहीं, बल्कि झलकियाँ प्रस्तुत की जाती हैं | इसमें विस्तृत कथा सूत्र नहीं होता हैं, तथा इसका प्रत्येक छन्द अपने आप में पूर्ण होता हैं | इसका किसी के साथ पूर्वापर संबंध नहीं होता हैं | आगे पीछे कोई संबंध न होने से ही ये मुक्त या स्वतंत्र माने जाते हैं | मुक्त होने से ही इन्हें

मुक्तक कहते हैं | गीतिकाव्य कवि के हृदय का स्पंदन हैं | इसमें कवि प्रेम, विरह, वेदना, हर्ष तथा विषाद का वर्णन करता हैं | गीतिकाव्य विषय प्रधान होता हैं | इसमें कवि अपने सुख-दु:ख की तीव्रतम अनुभूति को संगीत प्रधान कोमलकांत पदावली के मध्यम से व्यक्त करता हैं |

४.३ मुक्तक काव्य : स्वरूप

बंध की दृष्टि से प्राचीन समीक्षकों ने श्रव्यकाव्य के दो भेद माने हैं, प्रबंध और मुक्तक | प्रबंध में कथा होने से पूर्वापर संबंध रहता हैं, परन्तु मुक्तक में पूर्वापर संबंध का निर्वाह आवश्यक नहीं रहता, क्योंकि इसका प्रत्येक छन्द स्वतंत्र रहता हैं, और प्रबंध काव्य की ही भाँति इसमें कोई कथा नहीं होती, हाँ कुछ मुक्तक ऐसे अवश्य होते हैं, जिनका प्रत्येक छन्द स्वतंत्र अथवा अपने आप में पूर्ण होता हैं, और उनमें एक कथासूत्र भी अनुस्यूत होता हैं | सूरदास का भ्रमरगीत और तुलसीदास की 'विनय पत्रिका' एवं 'कवितावली' इसके प्रमुख ग्रंथ हैं | 'मुक्तक शब्द का अर्थ हैं 'स्वतंत्र | मुक्तक काव्य में प्रत्येक पद्य स्वतंत्र होता हैं, अर्थात एक पद्य का अर्थ जानने के लिए दूसरे पद्य की आवश्यकता नहीं होती | इसमें रचना स्वयं में ही स्वतंत्र और पूर्ण होती हैं | इसे स्फुट काव्य भी कहा जाता हैं | जिस प्रकार गुलदस्ते में सजाए गए फूल एक-दूसरे पर आश्रित नहीं हैं, और गुलदस्ते से एक फूल हटाने पर न तो फूल का सौन्दर्य बिगड़ता हैं और न ही गुलदस्ते का सौन्दर्य | इसी प्रकार मुक्तक के पद्य भी अपने आप में पूर्ण और स्वतंत्र होते हैं | प्रत्येक पद्य का अर्थ अपने आप में पूर्ण होता हैं | कबीर और सूरदास के गीत (पदों), मीरा के पद, बिहारी के दोहों तथा आधुनिक कवियों की स्फुट कविताओं को मुक्तक काव्य की कोटि में गिना जाता हैं | इसमें रचना स्वयं में पूर्ण और स्वतंत्र होती हैं | इसे स्फुट काव्य भी कहा जाता हैं |

प्रबंध काव्य और मुक्तक काव्य का अन्तर बताते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्लजी ने लिखा हैं कि 'मुक्तक में प्रबंध के समान रस की धारा नहीं रहती, जिसमें कथा प्रसंग की परिस्थितियों को भूला हुआ पाठक मग्न हो जाता हैं, और हृदय में 'एक स्थायी प्रभाव ग्रहण करता हैं | इसमें रस के ऐसे छीटे पडते हैं, जिनसे हृदय कलिका थोडी देर के लिए खिल उठती हैं | प्रबंध काव्य और मुक्तक काव्य का अन्तर एक रूपक के द्वारा इस प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता हैं,कि प्रबंध एक माला हैं और मुक्तक काव्य एक चुना हुआ गुलदस्ता | माला के किसी फूल को उससे अलग नहीं किया जा सकता, जबकि गुलदस्ते में लगे फूल स्वतंत्र होते हैं | प्रबंध काव्य में इसकी अविच्छिन्न धारा होती हैं, जबकि मुक्तक काव्य में रस के छीटों की प्रतीति होती हैं |

४.४ मुक्तक काव्य : विशेषताएँ

१) मुक्तक काव्य की सबसे बड़ी विशेषता हैं कि वह गीतिकाव्य की ही श्रेणी में आता हैं |

२) मुक्तक का प्रत्येक पद्य स्वतंत्र होता हैं प्रबंधात्मक नहीं |

३) प्राचीन काव्य शास्त्रीय मुक्तकों को उत्कृष्ट नहीं मानते थे,जबकि आचार्य आनन्दवर्धन ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की हैं |

४) मुक्तक का प्रत्येक श्लोक चमत्कार पूर्ण होता हैं|

५) मुक्तककार के पास जीवन का आधार फलक अत्यंत सीमित होता हैं|

६) मुक्तक में सजीव रूप रेखाओं एवं रंगो का होना अनिवार्य हैं|

७) जिस मुक्तक काव्य में रुपरंग जितना उज्ज्वल होगा, वह उतना ही सफल होगा|

८) संस्कृत के ‘अमरूक शतक एवं कवि वर बिहारी के दोहों में मुक्तक काव्य की उपरोक्त विशेषता अपनी चरम सीमा पर पहुँची हुई हैं|

९) मुक्तक काव्य में कल्पना की समाहार शक्ति और भाषा की समास शक्ति का होना अनिवार्य होता हैं|

१०) मुक्तकों को अपने खण्ड दृश्यों में रस की ऐसी वेगवती अजस्र धारा प्रवाहित करनी होती हैं जो हृदय कलिका को विकसित कर सके|

११) जो स्थायी प्रभाव मुक्त करने में सक्षम हो, वही मुक्तक हैं|

१२) जो पाठको को चमत्कृत कर दे वही मुक्तक हैं|

१३) बिहारी ने शब्दों का निपुण और बेजोड प्रयोग मुक्तकों में किया हैं|

१४) मुक्तक काव्य से तात्पर्य हैं, ऐसे काव्य जो किसी एक प्रसंगवश लिखे गए हैं|

१५) रामायण, महाभारत या रघुवंश आदि काव्य में अनेक प्रसंग हैं, जो काव्यकथाओं से ओत-प्रोत हैं| जिसमे अनेक भाव तथा अनेक रस हैं|

१६) मुक्तक काव्य किसी एक प्रसंग एक भाव तथा एक ही रस से निहित एक मात्र पद्य होता हैं|

१७) मुक्तक में एक पद्य अवश्य होता हैं|

१८) मुक्तक काव्य या कविता का वह प्रकार हैं, जिसमे प्रबंधकीयता नहीं होती|

१९) मुक्तक में एक छन्द में कथित बात का दूसरे छन्द में कही गई बात से कोई संबंध या तारतम्य होना आवश्यक नहीं हैं|

२०) हिन्दी के रीतिकाल में अधिकांश मुक्तक काव्यों की रचना हुई हैं|

२१) मुक्तक काव्य की वह विधा है, जिसमें कथा का कोई पूर्वापर संबंध नहीं होता हैं|

२२) मुक्तक का प्रत्येक छन्द अपने में पूर्णतः स्वतंत्र और सम्पूर्ण अर्थ प्रदान करने वाला होता हैं|

२३) रामायण और महाभारत जिन्हें हम प्रबंध काव्य कहते हैं, उनमें भी जनमानस तथा सभाओं में प्रयुक्त होने वाले मुक्तक काव्यों का वर्णन प्राप्त होता हैं|

२४) मुक्तक काव्य, प्रबंधकाव्य से बिल्कुल विपरीत हैं |

२५) मुक्तक काव्य में जीवन की विस्तृत झाँकी नहीं, बल्कि उसकी झलकियाँ प्रस्तुत की जाती हैं |

२६) इसमें विस्तृत कथासूत्र तो बिल्कुल नहीं होता हैं |

२७) मुक्तक का पूर्वापर संबंध नहीं होता हैं | आगे-पीछे कोई संबंध न होने से ही ये मुक्त अथवा स्वतंत्र माने जाते हैं |

२८) मुक्तक गीतो के रूप में भी पाए जाते हैं |

२९) मुक्तक काव्य प्रबंध काव्य से बिल्कुल विपरीत होता हैं |

३०) इसमें जीवन का व्यापक चित्र नहीं होता हैं |

३१) मुक्तक का स्वरूप लघु होता हैं |

३२) मुक्तक काव्य का स्वरूप बड़ा ही सीमित होता हैं |

४.५ गीतिकाव्य : स्वरूप

संस्कृत में गीतिकाव्यों की समृद्ध परम्परा हैं | ऋगवेद में स्तुतिपरक मंत्रो के माध्यम से सर्वप्रथम गीतियाँ लिखी गई थी; जिनमें ऋषियो ने अपने कोमल भावों को प्रकट किया था | ऋगवेद में अन्य सूक्तों में भी हमें सुख और दुख को प्रकट करने वाले गीत मिलते हैं, जिनमें हिरण्यगर्भ आदि ऋषियो ने व्यक्तिगत अनुभवों को निश्छल भाव से प्रकट किया हैं | गीतिकाव्य में गीतो को लोग अवकाश के समय में या विशिष्ट अवसरों पर गाते हैं | इनमें भक्ति या श्रृंगार से संबंधित गीत होते हैं | गीतिकाव्यों की रचना ऐसे छन्दो में होती हैं, जिन्हें सरलतापूर्वक गाया जा सके | सभी लोग इन गीतों को सुनकर भावविभोर हो उठते हैं | गीतिकाव्य का क्षेत्र बहुत व्यापक हैं | इसमें श्रृंगार और भक्ति से संबद्ध प्रबंधात्मक और मुक्तक दोनों तरह के काव्य आते हैं | सभी स्त्रोत्रकाव्य गेय होने से गीतिकाव्य की श्रेणी में आते हैं | मुक्तक काव्यों में गेयता पाए जाने के कारण उन्हें भी विद्वानों ने गीतिकाव्य की श्रेणी में ही रखा हैं |

काव्य और संगीत का घनिष्ठ संबंध हैं, यह संबंध प्राचीन युग से चला आ रहा हैं | गीतिकाव्य कविता का सर्वाधिक लोकप्रिय प्रकार हैं | इसे गेय, मुक्तक, प्रगीतकाव्य, गीतिकाव्य तथा अंग्रेजी में इसे 'लिरिक' कहतेहैं | गीतिकाव्य का मूल आधार भाव हैं | यह भाव किसी प्रेरणा के कारणगीत के रूप में फूट निकलता हैं | गीतिकाव्य की रचना उसी समय होती हैं, जब भाव घनीभूत होकार आवेश के साथ काव्योचित भाषा में अभिव्यक्त होते हैं | गीतिकाव्य कवि के हृदय का भी स्पन्दन हैं | इसमें कवि, प्रेम, विरह-वेदना तथा हर्ष-विषाद का वर्णन करता हैं | गीतिकाव्य प्राय: विषय-प्रधान ही होता हैं | इसमें कवि अपने सुख-दुख की तीव्रतम अनुभूति को संगीत प्रधान कोमलकांत पदावली द्वारा व्यक्त करता हैं | डॉ. गणपति चन्द्रगुप्त गीतिकाव्य के स्वरूप पर विचार व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि– 'गीतिकाव्य एक

ऐसी लघु आकार एवं मुक्तक शैली में रचित रचना हैं, जिसमें कवि निजी अनुभूतियों या किसी एक भाव दशा का प्रकाशन संगीत या लयपूर्ण कोमल पदावली में करता हैं।'

महादेवी वर्मा ने भी गीतिकाव्य को कुछ इस तरह से परिभाषित किया हैं– 'सुख-दुख की भावावेशमयी अवस्था विशेष को गिने-चुने शब्दों में स्वर साधना का उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत हैं।' अत: निष्कर्ष रूप में भी यह कहा जा सकता हैं कि वैयक्तिक सुख-दुखात्मक अनुभूति तीव्र वेग में जब शब्द के रूप में प्रकट होती हैं तो वह गीत का रूप धारणकर लेती हैं।

४.६ गीतिकाव्य : विशेषताएँ

उपरोक्त विवेचनों तथा परिभाषाओं के आधार पार गीतिकाव्य की कुछ विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं; जो कि कुछ इस तरह से हैं–

१) गीतिकाव्य में व्यक्तिगत अनुभूति की प्रमुखता रहती हैं।

२) गीतिकाव्य का संबंध बुद्धि से न होकर हृदय से रहता हैं।

३) गीतिकाव्य में भावावेश की भी प्रबलता रहती हैं।

४) इसमें गेयता और संगीतात्मकता भी विद्यमान रहती हैं।

५) गीतिकाव्य की भाषा सरल, मधुर और कोमल होती हैं।

६) गीतिकाव्य में संक्षिप्तता भी अधिक रहती हैं।

७) गीतिकाव्य. व्यक्ति प्रधान काव्य माना जाता हैं।

८) गीतिकाव्य कवि की व्यक्तिगत सुख-दुखमयी अभिव्यक्ति हैं।

९) इसमें हमेशा व्यक्तिगत भावनाओं का ही प्रकाशन होता हैं।

१०) गीतिकाव्य की शैली आत्माभिव्यंजना की अत्यन्त उत्कृष्ट शैली हैं।

११) यह शैली मुक्तक काव्य के लिए अत्यंत उपयुक्त हैं।

१२) इस शैली को भाव की एक–एक श्रृंखला को गुलदस्ते के रूप में सजाया जा सकता हैं।

१३) गीतिकाव्य में कवि अपनी अंतरात्मा में प्रवेश करता हैं।

१४) वह बाह्य जगत को अपने अन्त:करण में ले जाकर उसे भावों से रंजित करता हैं।

१५) जिस काव्य में एक तथ्य या एक भाव के साथ-साथ एक ही निवेदन, एक ही रस, एक ही परिपाटी हो वह गीतिकाव्य कहलाता हैं।

१६) सुख-दुख की भावावेशमयी अवस्था विशेषकर गिने-चुने शब्दों में स्वर-साधना के अनुरूप चित्रण कर देना ही गीतिकाव्य हैं |

१७) डॉ. नगेन्द्र ने आत्मनिवेदन और मनोरंजन को गीतिकाव्य के दो प्रमुख तत्व माने हैं |

गीतिकाव्य के तत्व:

i) वैयक्तिकता : गीतिकाव्य व्यक्ति प्रधान काव्य माना जाता हैं | गीतिकाव्य कवि की निजी सुख-दुखमयी अभिव्यक्ति हैं | गीतिकाव्य में निजी भावनाओ का प्रकाशन होता हैं | लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि गीत केवल वैयक्तिक सुख-दुख की अभिव्यक्ति हैं | गीत में अभिव्यक्त पराया दुख भी अपना लगता हैं, और अपना पराया लगने लगता हैं |

ii) तीव्र भावावेश : तीव्रभावानुभूति के बिना गीतिकाव्य का निर्माण तो हो ही नहीं सकता हैं | कवि की तीव्र भावनाएँ ही गीत बनकर अभिव्यक्त होती हैं |

iii) संगीतात्मकता : गीतिकाव्य में संगीतात्मकता और गेयता का विशेष महत्व हैं , इससे गीत और काव्य ज्यादा प्रभावी बन जाता हैं | गीत में छन्द एवं लय का निर्वाह कुछ इस प्रकार का हो कि उसे कही और कभी भी गाया जा सकता हैं |

iv) संक्षिप्तता : गीतिकाव्य में संक्षिप्तता का होना अनिवार्य हैं | अनुभूति की आवेशमयी एवं तीव्रतम अवस्था थोड़े समय तक ही रह सकती हैं | अत: अनुभूति की अखंडता और प्रभाव के लिए संक्षिप्तता बहुत ही आवश्यक हैं |

v) कोमलकांत पदावली : गीतिकाव्य में कोमल भावनाओं के अनुरूप कोमल, सुन्दर, प्रवाहपूर्ण प्रभावशाली एवं कलात्मक भाषा शैली होती हैं, जिसके कारण गीतों में रोचकता का निर्माण होता हैं | गीतिकाव्य में गीतकार को सीमित आकार में अपने भाव अभिव्यक्त करने अनिवार्य होते हैं | इसके लिए वह चुन-चुन कर शब्द विधान करता हैं | अथवा चित्रविधान करके अपने भाव को गहराई तक अभिव्यक्त करने का प्रयास करता हैं | इसके लिए कवि कोमलकान्त शब्दावली, स्वरमैत्री, तथा व्यंजनमैत्री का सायास करता हैं | सूरदास ने इस प्रयास में एक और विशेषता जोड़ दी हैं, वह हैं- बोलचाल के शब्दों का प्रयोग | उदाहरण देखिए –

खेलत में को काको गुसैया |

हरि हारे जीते सुदामा, बरबस ही कत–करत रिसैया |

जाति-पाति हमते बड नाही, नाही बसत तुम्हारी छवैया |

अति अधिकार जनावत यातै, जातै अधिक तुम्हारी गैया |

सूरदास की भाषा ब्रज ही हैं | उन्होंने उसे सजाया और संवारा हैं, तथा साहित्यिक रूप प्रदान किया हैं | इस तरह उपरोक्त विवेचन यह प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त हैं कि सूरदास गीतिकाव्य के अनन्य कलाकार और अद्भुत कवि हैं | उन्होंने गीतिकाव्य को उसके शिखर पर पहुंचा दिया है |

vi) रागात्मकता : गीतिकाव्य का प्राणतत्व वास्तव में राग हैं | सूर का काव्य रागों से अटा पड़ा हैं | सूरदास स्वयं उच्च कोटि के गायक थे | उन्होंने बड़ी सोच-समझ के बाद किसी राग का चयन किया हैं | जहाँ आवश्यक हुआ सूरदास ने नई राग रागनियों की भी रचना की हैं | एक अन्य विशेषता यह हैं कि उन्होंने समय के अनुसार राग-रागनियों का चयन किया हैं | जो राग प्रातः गाने योग्य है उसमें उन्होंने दोपहर तथा शाम को गाए जाने वाले पदों की रचना नहीं की | श्री कृष्ण को जगाने के लिए सूरदास ने राग-ललित और राग भैरव का प्रयोग किया हैं, जो उनके रागों के बारे में ज्ञान को प्रमाणित करता हैं | इसी तरह राग सारंग प्रातः नौ बजे से दोपहर दो बजे तक गाया जाता हैं | श्री कृष्ण के खेलने के इस समय को इसी राग में निबद्ध करके सूरदास ने यह प्रमाणित कर दिया हैं कि उन्हें राग गायन ही नहीं बल्कि राग शास्त्र का भी अच्छा ज्ञान था |

vii) भावाभिव्यक्ति : गीतिकाव्य की विशेषता यह हैं कि इसमें सदैव एक ही भाव निहित रहता हैं | यही कारण हैं कि यह विधा दूसरों से बिलकुल अलग होती हैं | सूरदास के पदों में भी यह गुण दिखाई देता हैं | दूसरे पद में अलग भाव दिखाई देता हैं | सूरदास ने विभिन्न भावों में विभिन्न पदों की रचना की हैं | श्रृंगार और वात्सल्य रस उनके बेहद लोकप्रिय रस हैं, तथा उन्होंने इन्हीं रसो को अधिकतर महत्त्व दिया हैं | इसी प्रकार श्री कृष्ण की बाल लीलाओं से संबंधित पदों में एक ही भाव पर पद की रचना की गई हैं |

भ्रमर गीत के प्रत्येक पद में एक ही भाव का विशेष वर्णन किया गया हैं | अगर एक पद में गोपियों के विरह का वर्णन मिलता हैं तो दूसरे में किसी अन्य भाव का गोपियों की विरह वेदना का वर्णन इस पद में द्रष्टव्य हैं –

उधौ मन न भए दस बीस |

एक हुतौ सो गयौ स्याम संग को अवराधै ईस |

इन्द्री सिथिल भई, केसब बिनु, ज्यों देही बिनु सीस |

इस तरह सूरदास ने पदों में एक ही भाव को एक पद में स्थान दिया हैं. जिससे उनके द्वारा रचित प्रत्येक पद पाठक को आनन्द से भर देता हैं |

viii) रसात्मकता : गीतिकाव्य में मुक्तक की अपेक्षा रस का परिपाक कम होता हैं, परन्तु सूरदास ने अपने काव्य कौशल्य से अपने पदों को सुन्दर बना दिया हैं | उदाहरण स्वरूप सूरदास ने अपनी उक्ति वैचित्र्य से प्राय: सभी रसों को प्रवाहित किया हैं | फिर भी श्रृंगार और वात्सल्य को उन्होंने अधिक महत्त्व दिया हैं | वात्सल्य रस का एक उदाहरण देखिए –

नीके रहियो जसुमति मैया |

आवैगै दिन चारि पांच में हम हलधर दोउ भैया |

विप्रलम्भ श्रृंगार भी भ्रमरगीत में मिलता हैं | यहाँ विरह की सभी दशाओं का सजीव वर्णन किया गया हैं |

४.७ सारांश

वैदिक काल अथवा उससे भी पूर्व गायन की परम्परा मिलती हैं | वेदों की सारी ही ऋचाएँ गेय हैं, सामवेद को गायन का सन्दर्भ ग्रंथ कहा जा सकता हैं | इससे यह तो सिद्ध हो जाता हैंकि रचने की प्रवृत्ति आरम्भ से ही भारत में थी | आज भी यह प्रवृत्ति दिखाई देती हैं और भविष्य में भी इसके निर्वाध गति से चलते रहने की सम्भावना हैं | सामवेद के बाद लौकिक संस्कृत साहित्य में सर्वश्रेष्ठ गीतिकार के रूप में जयदेव का नाम आता हैं | उनकी प्रसिद्ध रचना 'गीतगोविन्द' गीतिकाव्य की अनूठी कृति हैं |

गीतगोविन्द में ईश्वर की स्तुति की गई हैं, तथा दूसरी ओर अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना भी की गई हैं | इस रचना में लौकिक प्रेम को बड़े ही सरस एवं स्वाभाविक ढंग से प्रस्तुत किया गया हैं | यही कारण हैंकि अनेक विद्वान इस पर अश्लीलता का आरोप लगाते हैं | वास्तविकता यह नहीं हैं, क्योंकि जयदेव लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना करना चाहते थे | इसके उपरान्त हमें यह परम्परा आगे बढ़ती हुई दिखाई देती हैं | वीरगाथा काल के वीर गीतों में इसके दर्शन होते हैं | इन वीर गीतों में चन्दबरदाई जैसे कवियों ने अपने आश्रयदाताओं के शौर्य, पराक्रम ऐश्वर्य तथा प्रेम आदि का वर्णन करने के लिए गीतों को ही माध्यम बनाया |

उसके बाद मैथिल कोकिल विद्यापति का उल्लेख करना अत्यावश्यक है, जिन्हें हिन्दी में अभिनव जयदेव कहा जाता है| विद्यापति की काव्य कला उच्चकोटिकी थी | वे भावुक एवं रससिद्ध कवि होने के साथ-साथ अच्छे संगीतकार भी थे | भाषा पर इनका पूर्ण अधिकार था | उनके काव्य में शब्द चयन सर्वथा सटीक और भावानुकुल हैं | इनके मुक्तक सुन्दर एवं गेय कला से परिपूर्ण हैं |

डॉ. गंगा सहाय प्रेमी लिखते हैं कि इनके मुक्तक गीतों में कवित्व के विशद दर्शन होते हैं | इन्होंने काव्य में जो चित्र खींचा हैं वह सजीव हैं तथा गेय विशेषता के कारण और भी सुन्दर उभर कर सामने आया हैं | उसके उपरान्त भक्तिकाल में नामदेव, दादू, नानक, रैदास, सूरदास, तुलसीदास और मीरा के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं | कबीर के पद गेयता की दृष्टि से प्रायः साधु-संतों में ही अधिक गाये जाते थे| अन्य साधारण लोग भी इनके पदों को गाते थे | कबीर आदि सन्तो के पदों का विषय गूढ होने के कारण तथा उनमें हठयोग आदि का मिश्रण होने के कारण अधिक लोकप्रिय नहीं हुए, फिर भी कबीर आदि सन्तो को गीति परम्परा को अपने पदों के माध्यम से आगे बढ़ाने का श्रेय तो जाता ही हैं |

भक्ति काल के कवियों में गीतिकाव्य परम्परा में जो स्थान सूरदास को प्राप्त हैं, वह किसी अन्य कवि को नहीं | सूरदास नेत्रहीन होते हुए भी अपने पदों की स्वयं रचना करते थे | उनके पदों को गाते हुए सुनकर लोगों की दिनचर्या बन गई थी | कीर्तन करते हुए सूरदास अपने पदों को गाकर संतोष प्राप्त करते थे | वे उच्च कोटि के भावुक तथा रससिद्ध कवि थे | उनकी प्रसिद्ध रचना 'सूरसागर' गीतिकाव्य का अनूठा ग्रंथ हैं | सूरदास को विविध राग-रागनियों का समुचित ज्ञान था | उन्होंने अनेक रागों की रचना भी की थी |

आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य में सौंदर्य और उसकी अभिव्यक्तियों के अनेक रूप मिलते हैं | आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य का विकास प्राय: छायावाद से हुआ माना जाता हैं, क्योंकि इससे पूर्व द्विवेदी युग में आदर्शवाद कठोरता के कारण व्यक्ति सौंदर्य न के बराबर ही था | परंतु ज्यों ही द्विवेदी युग का अंत और छायावाद का उदय हुआ, वैसे ही गीतिकाव्य का विकास होता चला गया हैं |

४.८ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) मुक्तक काव्य के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए |

२) मुक्तक काव्य की प्रमुख विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए |

३) गीतिकाव्य को परिभाषित करते हुए उसके स्वरूप पर प्रकाश डालिए |

४) गीतिकाव्य की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए |

४.९ लघुत्तरीय प्रश्न

१) बंध की दृष्टि से प्राचीन समीक्षकों ने श्रव्यकाव्य के कितने भेद माने है ,वे भेद कौन से है ?

उत्तर – दो भेद माने है – प्रबंध व मुक्तक

२) तुलसीदास की 'विनय पत्रिका' कौन से काव्य का उदाहरण है ?

उत्तर – मुक्तक काव्य

३) गीतिकाव्य की श्रेणी में कौन सा काव्य आता है ?

उत्तर – मुक्तक काव्य

४) सर्वप्रथम गीतियाँ किस वेद में है ?

उत्तर – ऋग्वेद

५) 'सुख दुख की भावावेशमयी व्यवस्था विशेष को गिने-चुने शब्दों में स्वर साधना उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है |' उपर्युक्त परिभाषा गीतिकाव्य के संबंध में किस विद्वान की है ?

उत्तर – महादेवी वर्मा

४.१० संदर्भ ग्रंथ

१) काव्य के रूप – बाबू गुलाबराव

२) काव्य प्रदीप – श्री रामबहोरी शुक्ल

३) काव्य परिचय – राजेन्द्र प्रसाद श्रीवास्तव

४) काव्य के तत्त्व – आचार्य देवेंद्रनाथ शर्मा

❖❖❖❖

५

काव्य के रूप - गजल

इकाई की रूपरेखा

५.१ उद्देश्य

५.२ प्रस्तावना

५.३ गजल का स्वरूप

५.४ गजल की विशेषताएँ

५.५ सारांश

५.६ दीर्घोत्तरी प्रश्न

५.७ लघुत्तरीय प्रश्न

५.८ संदर्भ ग्रंथ

५.१ उद्देश्य

- गजल के स्वरूप को समझने हेतु |
- गजल की विशेषताओं को समझने हेतु |

५.२ प्रस्तावना

हमारे भारतीय साहित्य में गजल की बडी लम्बी परंपरा विद्यमान हैं | गेयता के कारण यह विधा अत्यन्त ही लोकप्रिय हुई हैं | गजल फारसी भाषा की सशक्त काव्यशैली भी मानी जाती हैं | उर्दू में गजल एक प्रमुख विधा के रूप में सम्मानित हैं | अत: ऐसी प्रमुख और लोकप्रिय विधा के स्वरूप तथा उसकी महत्वपूर्ण विशेषताओं का परिचय प्राप्त करना जरुरी हो जाता हैं |

५.३ गजल का स्वरूप

हिन्दी गजल विधा फारसी और उर्दू से प्रभावित हैं | इसीलिए प्रभाव ग्रहण की दृष्टि से हिन्दी गजल का विकास फारसी और उर्दू साहित्य के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया जा रहा हैं | गजल शब्द अरबी भाषा का है | इस कारण अधिकांश लोगों की यह धारणा हैं कि गजल का उद्भव भी अरबी भाषा से ही हुआ है, किन्तु वास्तव में ऐसी बात नहीं हैं | इस संबंध में अयोध्या प्रसाद गोयलीय लिखते हैं :- इश्क ही गजल का प्राण, मन और शरीर सबकुछ होने के कारण यह हैं कि गजल का शाब्दिक अर्थ ही इश्किया अशआर कहने और औरतो की बाते करने से

हैं | गजल यूँतो अरबी भाषा का शब्द हैं | मगर ईरानियों ने इसे विशेष तौर पर अपनाया है | वहाँ हजारो वर्षो से ज्यादा गजल का दौर रहा हैं | 'रुदकी' जो कि ९१० के लगभग जन्नतनशी हुआ, गजल का बहुत बडा उस्ताद था | इस संबंध में डॉ. रोहिताश्व आस्थाना लिखते हैं कि "अरबी साहित्य में प्रेम भावना संबंध का निरुपण अवश्य हुआ हैं, किन्तु इसका स्वरूप गजल का न होकर 'तश्बीब' अथवा 'नसीब' नामक विधा का हैं | यद्यपि इन विधाओं में भी गजल की भाँति प्रेम और यौवन से संबंधित भावनाओं का चित्रण किया जाता हैं, किन्तु अपने मूल रूप में यह कसीदे का ही अँग हैं |" इस प्रकार अरबी कवियों एवं साहित्यकारों के मन में गजल की स्पष्ट कल्पना अवश्य थी | किन्तु वह अरबी काव्य का साकार स्वरूप नहीं बन सकी | फारसी भाषा में गजल के जन्म के संबंध में एक अन्य मतानुसार सामंती युग में वहाँ के बादशाहों की प्रशंसा में जो कसीदे लिखे जाते थे, काव्य का एक टुकड़ा तश्बीब के नाम से पुकारा जाता था | इस टुकड़े में कवि को अपने मन की बात कहने की स्वतंत्रता रहती थी | इसमें वह प्राकृतिक सौन्दर्य, प्रेम व वियोग आदि की भावनाएँ व्यक्त करता था | कसीदे का यह टुकडा ही उससे अलग होकर गजल बन गया | 'तश्बीब' के शेरों में अपरा-पर संबंध नहीं होता था, और अधिकतर शेर प्रेमवार्ता पर आधारित होते थे | इसलिए यह शायरी गजल के नाम से पहचानी जाने लगी और उसने अपना अलग अस्तित्व स्थापित कर लिया |

'अरबी में गजल नाम की कोई विधा नहीं थी | अरबी काव्य विधा कसीदे के प्रारंभिक भाग तश्बीब' को फारसी के शायरों ने कसीदे से अलग करके गजल नाम की एक नई विधा के रूप में परिवर्तित कर दिया | इसलिए भी हम यह कह सकते हैं कि गजल विधा का जन्म अरबी साहित्य में न होकर फारसी साहित्य में ही हुआ हैं | जब फारसी के साहित्यकारों का हिंदुस्तान से संपर्क स्थापित हुआ तो गजल विधा फारसी से उर्दू तथा हिन्दी में अवतरित हुई | ईरान में दसवी शताब्दी में रौदकी नामक एक अंध कवि हुए, जिन्होंने सर्वप्रथम गजल विधा को जन्म दिया | फारसी साहित्य में रौदकी के अलावा दकीकी वाहिवी, निजामी, कमाल, बेदिल, फैजी, शेख सादी, अमीर खुसरो, हाफिज, शीराजी, शाहजहाँ कालीन चंद्रभान ब्राम्हण आदि ने अपनी अपनी गजलों के मध्यम से ही गजल विधा को समृद्ध किया | गजल के स्वरूप की बात करे तो गजल अरबी भाषा का शब्द हैं, जिसका शाब्दिक अर्थ हैं, 'प्रेमिका से वार्तालाप' | गजल एक ऐसा काव्य रूप है, जिसका मुख्य विषय 'प्रेम' या 'इश्क' होता हैं | इसमे 'तनिक भी संदेह नहीं हैं कि गजल काव्य की अत्यंत लोकप्रिय विधा रही हैं | कम से कम शब्दो में भावनाओं को अभिव्यक्त करने का यह एक प्रभावी मध्यम हैं | गजल को कई विद्वानों ने परिभाषित करने का प्रयास किया हैं | गजल के स्वरूप को समझने के लिए विभिन्न परिभाषाओं का अध्ययन करना भी अत्यावाश्यक है | गजल के संबंध में नालन्दा विशाल शब्दसागर में यह उल्लेख मिलता हैं कि – फारसी और उर्दू में शृंगार रस की कविता | 'उर्दू हिन्दी शब्दकोश' की दृष्टि से गजल का अर्थ हैं– 'प्रेमिका से वार्तालाप' | 'उर्दू फारसी कविता का एक प्रकार विशेष जिसमें प्राय: पाँच से लेकर ग्यारह शेर मौजूद होते हैं |"

प्रत्येक विधा का अपना एक रूप होता हैं, जिससे उस विधा की एक व्यक्तिगत पहचान बनती हैं | केवल भाव एवं भाषा से ही गजल जैसी विधा को नहीं जाना समझा जा सकता

हैं | उसके विशिष्ट ढाँचे को भी जानना समझना जरुरी हैं | गजल के प्रमुख अंगो में शेर, मिसरा, काफिया, रदीफ, मतला, मक्ता आदि महत्वपूर्ण अंग हैं | हिन्दी साहित्य कोश में गजल का अर्थ नारियों से प्रेम की बाते करना ही मिलता हैं | मौलाना अल्ताफ हाली के अनुसार जहाँ तक गजलो की मूल प्रकृति का संबंध हैं, तो उसका विषय प्रेम के अतिरिक्त कुछ और नहीं हैं |' फिराक गोरजपुरी के अनुसार 'गजल एक असम्बध कविता हैं |' गजल का मिजाज मूलत: समर्पणवादी होता हैं | प्रोफेसर कलीमुद्दिन अहमद ने गजल को नीम बहशी सिन्फ सुखन कहा हैं | गजल के स्वरूप और व्युत्पत्ति विषयक धारणा को लेकर प्राय: गजल मर्मज्ञो में थोडा-बहुत मतान्तर रहा है, किन्तु वे सभी इस बात से सहमत हैं कि ग़ज़ल प्रेमाभिव्यक्ति का सशक्त एवं प्रभावोत्पादक माध्यम हैं | अनेक विद्वानों ने अपने – अपने दृष्टिकोण से गजल जैसी विधा को परिभाषित किया हैं |

हिन्दी गजल को परिभाषित करते हुए डॉ. कुँवर बेचैन लिखते हैं कि 'गजल रेगिस्तान के प्यासे होठों पर उतरती हुई शीतल तरंग की उमंग हैं |' गजल घने अंधकार में टहलती हुई चिन्गारी हैं | गजल नींद से पहले का सपना हैं | गजल जागरण के बाद का उल्लास हैं | गजल गुलाबी पंखुरी के मंच पर बैठी हुई खुशबू का मौन स्पर्श हैं |' गोपालदास नीरज के अनुसार-'गजल न तो प्रकृति की कविता हैं न अध्यात्म की, वह हमारे उसी जीवन की कविता हैं, जिसे हम सचमुच जीते हैं | यदि शुद्ध हिन्दी में गजल का स्वरूप विश्लेषण पर गजल लिखनी हो तो पहले हमे हिन्दी का वह स्वरूप तैयार करना होगा जो दैनिक जीवन की भाषा और कविता की भाषा की दूरी को मिटा सके |' हिन्दी गजल के अन्य सशक्त हस्ताक्षर डॉ. उर्मिलेश के विचार में 'हिन्दी गजल से मेरा अभिप्राय उर्दू कविता से आयातित उस काव्य विधा से हैं जो उर्दू गजल की शैल्पिक काया में हिन्दी की आत्मा को प्रतिष्ठित करती हुई, अपनी गेयता को सुरक्षा देती हुई, आधुनिक जीवन और परिवेश की संगतियो और विसंगतियो को नूतन भावबोध के साथ स्थापित करती हुई आगे बढ़ रही हैं | जिस गजल में हिन्दी की प्रकृति और व्याकरण की सुरक्षा के साथ नवागत विम्बो और प्रतीको का विधान हैं | मेरी समझ में उसे हिन्दी गजल मान लेने में कोई हर्ज नहीं हैं |' उर्दू के कवियों ने जिस तरह अपने काव्य में हिन्दी गीतो को आत्मसात कर लिया हैं, वैसे ही हिन्दी कवि यदि गजल को अपनी तरह आत्मसात कर लें तो साहित्यिक साम्प्रदायिकता का मूलोच्छेद बहुत जल्दी हो जाएगा |

हिन्दी साहित्य के विद्वानों, अध्येताओ और रचनाकारों ने भी समय समय पर गजल के बारे में अपने विचार व्यक्त किए हैं | प्रसिद्ध कवि पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने गजल का अर्थ 'जवानी का हाल बयान करना या माशूक की संगति और इश्क का जिक्र बताते हुए लिखा हैं कि एक गजल में प्रेम के भिन्न-भिन्न भावोंके शेर लाने का नियम रखा गया हैं | किसी शेर में आशिक अपनी मनोवेदना प्रकट करता हैं, जिसमें माशूक पर उसका कुछ प्रभाव पडे | किसी शेर में वह माशूक की प्रशंसा करता हैं, जिससे वो प्रसन्न हो, किसी शेर में वह माशूक की वफा और जफा का जिक्र करता हैं | तात्पर्य यह हैंकि जिस बात के कहने से माशूक के प्रसन्न होने या और कोई खास नतीजा मिलने की आशा होती हैं, वही बाते गजल में आती हैं |'

मशहूर गजलकार दुष्यन्तकुमार का मानना हैं कि गजलो के भूमिका की जरुरत नहीं होनी चाहिए | उर्दू और हिन्दी अपने–अपने सिंहासन से उतरकर जब आम आदमी के पास आती

हैं तो उसमें फरक कर पाना बड़ा मुश्किल होता हैं | अब्दुल बिस्मिल्लाह के अनुसार यह गजल का स्वरूपसर्व विदित हैं कि गजल अब अपने शाब्दिक अर्थ से बाहर आ गई हैं | वह एक ऐसी काव्य विधा बन गई हैं, जिसमे जीवन के विविध पहलुओं की अभिव्यक्ति हो रही हैं| गजल का स्वरूप विश्लेषण करने वाले डॉ. नरेन्द्र वशिष्ठ का मत हैं कि 'गजल का मूलक्षेत्र नारी विषयक भावों से संबंधित हैं | दरअसल गजलगोई का अधिकार संबंध विरह जन्य व्यथा से रहा हैं | अत: इसमें हृदय को छू लेने की क्षमता को बहुत बड़ा गुण माना गया हैं |'

इस प्रकार हिन्दी गजल के संबंध में उपलब्ध परिभाषाएँ अपने अपने दृष्टिकोण को प्रस्तुत करती हैं, जिनका समग्र रूप से अध्ययन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि हिन्दी गजल, उर्दू – फारसी से आयातित वह काव्य विधा हैं, जो पूर्व निर्धारित लघुखण्डो में आबद्र अनेक शेरों के मध्यम से प्रतीकों एवं बिम्बों के सहारे पढ़े लिखे आम आदमी की भाषा में आधुनिक जीवन मूल्यों की प्रतिस्थापना में सहायक सिद्ध हुई हैं | अनुभूति की तीव्रता एवं संगीत्माकता हिन्दी गजल के प्राण हैं | हिन्दी गजल एक संभावनाशील किन्तु सशक्त काव्यरूप हैं | कवि मानस की तीव्रानुभूति को कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त करने के लिए इससे उत्तम कोई अन्य मध्यम नहीं हैं | चूँकि हिन्दी गजल के लिए उर्दू फारसी गजल ने उर्वर भावभूमि तैयार की |

अत: हिन्दी गजल का स्वरूप उर्दू-फारसी गजल से मिलता जुलता हैं | गजल का प्रत्येक शेर अपने आप में स्वतंत्र एवं सम्पूर्ण होता हैं | इसके प्रत्येक शेर में एक नवीन विषय अथवा विचार अन्तर्निहित होता हैं | गजलकारों को शेरों में शब्द सौष्ठत्व का विशेष ध्यान रखना पडता हैं | यदि एक भी शब्द हटाकर उसके स्थान पर दूसरा शब्द प्रयोग कर दिया जाए तो सब कुछ बेकार हो जाएगा | हिन्दी गजल में इश्क मजाजी अथवा इश्क हकीकी की अपेक्षा इश्क इंसानियात पर ही अधिक बल दिया गया हैं | कहने का तात्पर्य यह हैं कि गजल में प्रेम एवं वासना जैसी परम्परागत गजल के तत्वों को नकारते हुए समाज, राजनीति, धर्मं, शासन एवं सर्वहारा वर्ग की समस्याओं, विसंगतियों तथा विद्रूपताओं का यथार्थ स्वरूप प्रतीको एवं बिम्बो के माध्यम में प्रस्तुत किया जाता हैं | हिन्दी में लिखी जाने वाली गजलो में गजल के सम्पूर्ण रूपाकार शिल्प व्यवस्था और अभिव्यक्ति भंगिमा को हुबहू आत्मसात कर लेने के बावजूद कुछ गजलकारों ने गजल को नया नाम देने की कोशिश की हैं | गोपालदास नीरज ने गीतिका, विराट ने मुक्तिका, चन्द्रसेन, मोहन अवस्थी ने अनुगीत आदि नाम देने की कोशिश की हैं | लेकिन गजल के अधिकांश समर्थ रचनाकारों ने इन नामकरणों को नकारकर उसे गजल कहना ही अधिक उचित समझा हैं |

गजल का स्वरूप विश्लेषण परम्परागत और उर्दू गजल की बहुत सारी बातो को स्वीकार करने के बाद भी हिन्दी गजल की अपनी निजता और पृथकता हैं | इसमें उर्दू की बहरों के साथ ही हिन्दी के छन्दो के आधार पर भी गजलें लिखी जा रही हैं | गजलकारों ने एक गजल में सैकड़ो शेर तक कहे हैं | इसी प्रकार उर्दू गजल में प्रत्येक शेर अलग-अलग विषय से संबद्ध होते हैं, हिन्दी ग़ज़ल में भी ऐसा ही होता हैं | किन्तु बहुत सारी गजले ऐसी भी लिखी जा रही हैं, जिनमे सभी शेर एक ही केन्द्रीय विषय से संबद्ध हैं | उर्दू और हिन्दी के विद्वानों, रचनाकारों की समस्त परिभाषाओं और गजलों की कुछ विशेषताओं पर भी प्रकाश डाला गया हैं |

५.४ गजल की विशेषताएँ

गजल की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए डॉ. वशिष्ठ अनूप ने कहा हैं कि 'गजल को परिभाषित करना हो तो मै यह कहना चाहूँगा कि गजल उर्दू हिन्दी शायरी की सबसे सशक्त और लोकप्रिय विधा हैं | जो अपने जन्म के समय प्रेम और सौन्दर्य से बाबस्ता थी | वह अरबी और फारसी से होती हुई कई पीढ़ियों बाद जब हिन्दी में पहुँची तो उसका रुपरंग और नाक-नक्श काफी सीमा तक परिवर्तित हो चुका था | आज वह पूरी तरह भारतीय संस्कृति और साहित्य के रंग में रंगकर जमाने के साथ कदम मिलाकर चल रही हैं | इसकी दुनिया आज बहुत बडी हो चुकी हैं | गजल के दामन में आज हर रंग के फूल हैं और हर फूल की खुशबू हैं, मिट्टी की सोंधी गंध हैं, किन्तु इसमें जहरीले काँटे भी हैं, दहकते हुए अंगारे भी हैं, जनजीवन की व्यथा-कथा और आँसू भी हैं | इसमें कृष्ण की वंशी की धुन, मंद और शिव के डमरू का स्वर तीव्र हैं | इसमें काम के बाण विरल और राम के बाण अधिक हैं |

गजल की काव्यगत विशेषताओं को रेखांकित करते हुए श्री देवेंद्र शर्मा इन्द्र ने लिखा हैंकि 'गजल का कथ्य अब अपेक्षाकृत बहुत विस्तृत हो चुका हैं | सामंती मनोरंजन करनेवाली उत्तेजक सामग्री के स्थान पर अब उसमें आम आदमी, दुख-दर्द का अभावग्रस्त, जिन्दगी के तनावो का, भीड में खोए हुए व्यक्ति की अस्मिता का, मानवीय मूल्यों के विघटन का सामाजिक अव्यवस्था, शोषण और आतंक का उपजीव्य सामग्री के रूप में अधिक प्रयोग किया जाता हैं |

गजल की विशेषताओं को परिभाषित करते हुए शिवओम अंबरजी लिखते हैं कि 'समसामयिक हिन्दी गजल भाषा के भोजपत्र पर लिखी हुई विप्लव की अग्नि ऋचा हैं, गुलाब की पंखुड़ी पर क्रान्ति की कारिका लिपिबद्ध करने का संकल्प है | वरिष्ठ गजलकार और कवि शमशेर बहादुर सिंह के अनुसार 'गजल एक लिरिक विधा हैं, जिसकी कुछ अपनी भी शर्ते हैं, अपना प्रतीकवाद और अपनी जीवंत परम्परा हैं |' गजल की प्रमुख विशेषताओं को लेकर श्रीमाजदाअसद का कहना हैं कि साहित्य और समाज में गजल का वही स्थान हैं जो किसी भरे-पूरे घर में एक अलबेली सुन्दरी का होता हैं | उसके चाहने वालो में बड़े-बूढ़े, औरत-मर्द, सूफी, योग्य और अयोग्य ज्ञानी और अज्ञानी सभी होते हैं | कुछ उसके अल्हड़पन के दिलदार हैं, तो कुछ उसकी शोखियों पर मरते हैं, कुछ उसकी गंभीरता-धीरता और रख-रखाव पर आसक्त हैं, तो उसके हाव-भाव और चाल चोचले पर नाक-भौं चढ़ाते हैं |

ज्ञानेंद्र ने गजल की विशेषताएँ बताते हुए उसकी परिभाषा कुछ इस तरह से दी हैं, गजल एक छान्दिक विधा हैं | छान्दिक रचनाएँ अन्य किसी भी विधा की रचनाओं का स्वरूप विश्लेषण अधिक प्रभावशाली होता है | जब तक समकालीन कविता में छान्दिक प्रभाव रहा, वह बहुत ही गहरे तक स्वीकृत हुई | हिन्दी गजल की समकालीन साहित्यिक विधा के रूप में सामने आई | जो जन-सामान्य की पीड़ा के साथ समकालीन कथा को बड़ी ही सहजता के साथ छन्द में कथ्य की विविधता को अभिव्यक्त कर रही हैं | आज गजल विधा वर्तमान पदचाप के साथ भावात्मक सौन्दर्य को बड़ी ख़ूबसूरती के साथ परोस रही हैं | हिन्दी गजल अर्थात वैसी गजल जिसमे हिन्दी शब्दों का प्रयोग और हिन्दी व्याकरण शैली का निर्वाह हुआ हैं | डॉ. किशन तिवारी ने गजल की महत्वपूर्ण विशेषता बताते हुए कहा हैं कि 'गजल अब

राजदरबारो या कोठों के मुजरो से बताते हुए कहा हैं, कि 'गजल अब राजदरबारों या कोठों के मुजरों से उतरकर आम आदमी के आटे-दाल की चिन्ता से भी चिन्तित हैं। समकालीन हिन्दी गजल ने उन तमाम पहलुओं को छुआ हैं, जो वर्षो से अछूते रहे हैं। गजल की एक अन्य विशेषता में उसका भाषिक सौन्दर्य, ताजा मक्खन की कोमलता और महक, केशर का रंग एवं सुगंध तथा प्रेम का सम्पूर्ण रोमांच विद्यमान हैं। नवीनतम विषयों का निचोडहैं। आकाश का छोर ढूँढने की ललक हैं। शब्दों में निहित स्वाद तथा लावण्य का भी अनोखा और अनूठा सुमेल हैं।

मानव मन को अभिप्रेरित करने वाले शब्दों का सविस्तर कोष गजल में आज भी विद्यमान हैं, जिसमें भाषा की रंगीन उँगली का सुकोमल स्पर्श तथा सूक्ष्म समालोचना इसमें शब्दार्थों की व्यापकता, मुहावरों तथा लोकोक्तियों का सुंघरू बजाता हुआ जल प्रपात गजल में हमें दिखाई भी देता हैं। कवयित्री मधुरिमा सिंह ने गजल की विशेषताओं को परिभाषित करते हुए लिखा हैं कि 'अपनी हथेली पर झिलमिलाता आँसू की बूँद को उसकी तरलता और पारदर्शिकता को छुए बिना दूसरे की हथेली पर सावधानी से रख देने का ही दूसरा नाम गजल हैं। गजल जिन्दगी की पलकों पर थरथराती हुई आँसू की बूँदे हैं, जो सूरज की रोशनी अपने भीतर समेटकर सतरंगी आभा से आलोकित हो जाती हैं। गजल धूप की नदी में पाँव छपछपाती हुई चाँदनी हैं।'

गजल की प्रमुख विशेषता के सन्दर्भ में डॉ.नरेन्द्र वशिष्ठ का विचार हैं कि– गजल का मूल क्षेत्र नारी विषयक भावो से संबंधित हैं, दरअसल गजलगोई का अधिकार संबंध विरह जन्य व्यथा से रहा हैं। अत: इसमे हृदय को छू लेने की क्षमता को बहुत ऊँचा गुण माना गया हैं। इस प्रकार हिन्दी गजल के सन्दर्भ में उपलब्ध तमाम विशेषताएँ अपने – अपने दृष्टिकोण को प्रस्तुत करती हैं, जिनका समय रूप से अद्यावत करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हिन्दी गजल उर्दू-फारसी से आयातित वह काव्य विधा हैं, जो पूर्व निर्धारित लघुखण्डो मे आबद्ध अनेक शेरो के माध्यम से प्रतीकों एवंबिम्बो के सहारे पढ़े-लिखे, आम आदमी की भाषा में आधुनिक जीवन मूल्यों की प्रतिस्थापना में सहायक सिद्ध हुई हैं। अनुभूति की तीव्रता एवं संगीत्माकता हिन्दी गजल के प्राण हैं। हिन्दी गजल एक संभावनाशील किन्तु सशक्त काव्यरूप हैं। कवि मानस की तीव्रानुभूति को कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त करने के लिए इससे उत्तम कोई अन्य माध्यम नहीं हैं। अत: हिन्दी गजल का स्वरूप उर्दू-फारसी ग़जल से मिलता–जुलता हैं। गजल का प्रत्येक शेर अपने आप में स्वतंत्र एवं सम्पूर्ण होता हैं। इसके प्रत्येक शेर में एक नवीन विषय अथवा विचार अंतर्निहित होता हैं। शेर की मात्र दो पंक्तियाँ जीवन की किसी वास्तविकता किसी अनुभूति अथवा परिवेशगत यथार्थ की रूपरेखा को अपने में समाहित करने की क्षमता रखती हैं।

५.५ सारांश

सारांश रुप में हम यह कह सकते हैं कि गजलों की प्रधान विशेषता संक्षिप्तता होने के कारण उनमे दोहा छंद की भाँति थोड़े में बहुत कुछ कहने अथवा गागर में सागर भरने की सामर्थ्य निहित होती हैं। अत: गजलो में अनुभूति की संप्रेषणीयता का महत्त्व असंदिग्ध हैं। वास्तव यदि गजल को कवि की अनुभूतियों का विस्फोट कहें तो यह अतिश्योक्तिन होगी। गजलो में

कवि अपना दु:ख–दर्द, हर्ष, उल्लास, ग्लानि-क्षोभ, प्रायश्चित, उपालंभ, देशकाल तथा परिस्थितियों के प्रति आत्म-दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता हैं | गजल के एक-एक मिसरे में कवि का अन्तर्जगत प्रतिबिंबित होता हैं |

अब तक के अध्ययन से हमने देखा की गजल अरबी और फारसी से होती हुई उर्दू से पहले हिन्दी में आई और अमीर खुसरो ने फारसी, हिन्दी और लोकभाषाओं के मिले-जुले प्रयोग से गजल को एक नया रूप प्रदान किया | अमीर खुसरो के बाद कबीर दास, प्यारेलाल शोकी और गिरीधरदास से होती हुई गजल आधुनिक काव्य तक पहुँची | हिन्दी में भक्ति साहित्य के कवियों द्वारा गीत, चौपाई, दोहा और पदों जैसे छन्दों को अपनाए जाने के कारण गजल जैसे काव्य रूप पर उनका ध्यान नहीं गया | गजल का व्यवस्थित लेखक हिन्दी में भारतेन्द्रू युग में ही हमे मिलता हैं | भारतेंदु हरिश्चंद्र, प्रतापनारायण मिश्र, एवं बदरी नारायण चौधरी प्रेमघन ने इस युग में अच्छी गजले लिखी हैं |

हिन्दी गजल एक संभावनाशील किन्तु सशक्त काव्य रूप हैं | कवि मानस की तीव्रानुभूति को कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त करने के लिए इससे उत्तम कोई अन्य मध्यम हो ही नहीं सकता हैं | चूँकि हिन्दी गजल के लिए उर्दू-फारसी गजल ने उर्वर भावभूमि तैयार की | अत: हिन्दी गजल का स्वरूप उर्दू-फारसी गजल से मिलता-जुलता हैं | गजल का प्रत्येक शेर अपने आप में स्वतंत्र एवं सम्पूर्ण होता हैं | इसके प्रत्येक शेर में एक नवीन विषय अथवा विचार अंतर्निहित होता हैं | शेर की दो पंक्तियाँ जीवन की किसी वास्तविकता, किसी अनुभूति अथवा परिवेशगत यथार्थ की रूपरेखा को अपने में समाहित करने की सामर्थ्य रखती हैं | गजलों की प्रधान विशेषता संक्षिप्तता होने के कारण उनमे दोहा छन्द की भाँति थोडे में बहुत कुछ कहने अथवा गागर में सागर भरने की सामर्थ्य निहित होती हैं | अत: गजलो में अनुभूति की संप्रेषणीयता का महत्त्व भी असंदिग्ध हैं |

वास्तव में यदि गजल को कवि की अनुभूतियों का विस्फोट कहे तो यह अतिश्योक्ति न होगी | गजलों में कवि अपना दु:ख, दर्द, हर्ष, उल्लास, प्रायश्चित, उपालम्भ, देश-काल तथा परिस्थितियों के प्रति आत्म दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता हैं | गजल के एक-एक मिसरे मेंकवि का अंतर्जगत प्रतिबिम्बित होता हैं | अभी तक के अध्ययन में हमने यह देखा की गजल अरबी और फारसी से होती हुई, उर्दू से पहले हिन्दी में आई और अमीर खुसरो ने फारसी हिन्दी और लोकभाषाओं के मिले –जुले प्रयोग से गजल को एक नया रूप प्रदान किया | अमीर खुसरो जी के बाद कबीर दास, प्यारेलाल शोकी और गिरीधरदास से होती हुई गजल आधुनिक काव्य तक पहुँची | हिन्दी में भक्ति साहित्य के कवियों द्वारा गीत, चौपाई, दोहा और पदोंजैसे छन्दो को अपनाए जाने के कारण गजल जैसे काव्य रूप पर उनका ध्यान नहीं गया |

रीतिकालीन कवियों ने दोहा, सवैया, घनाक्षरी आदि छन्दो में रचनाएँ की | हिन्दी साहित्य में गजल के अध्येताओं ने मीराबाई के कुछ पदों और आचार्य केशवदास की रामचंद्रिका में गजल के छन्दशास्त्र की लय लक्षित की हैं | किन्तु गजल का व्यवस्थित लेखन भारतेन्दु युग में ही मिलता हैं | भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' आदि ने इस युग में अच्छी गजलें लिखी हैं | द्विवेदी युगीन कवियों में श्रीधर पाठक मैथिलीशरण गुप्त, केशव प्रसाद मिश्र, मन्ननद्विवेदी, सत्यनारायण कवि रत्न, बदरीनाथ भट्ट,

ठाकुर गोपाल शरण सिंह, रायदेवी प्रसाद पूर्ण, रामनरेश त्रिपाठी,लाला भगवानदीन इत्यादि ने गजलें लिखीं | इन कवियों ने उर्दू लयाधारो और हिन्दी छन्दो को भी अपनाया यहाँ गजल की अंतर्वस्तु मुख्य रूप से भक्ति और देश प्रेम हैं |

छायावादोत्तर हिन्दी गजल के विकास में दुष्यंत कुमार से पूर्वजिन रचनाकारों ने विशेष भूमिका निभाई हैं, उनमे जानकी बल्लभ शास्त्रीने काफी बलवीर सिंह रंग, हंसराज रहबर, शमशेर बहादुर सिंह, त्रिलोचना शास्त्री, रामावतार त्यागी और गोपालदास नीरज का नाम अत्याधिक उल्लेखनीय जान पडता हैं | गजल को लोकप्रियता प्रदान करने में जानकी बल्लभ शास्त्री ने काफी रचनात्मक भूमिका अदा की हैं | रचनाओं के साथ उनका स्वर भी बहुत अच्छा था | इसी प्रकार बलवीर सिंह रंग मूलत: रोमानी भावधारा के सशक्त गीतकार एवं गजलकार रहे हैं | उनकी गजलो में परम्परागत गजलो की सारी विशेषताएँ लक्षित की जा सकती हैं | नई कविता के प्रतिष्ठित कवि शमशेर बहादुर सिंह ने भी काफी अच्छी गजले लिखी हैं | देखा जाए तो कविताओं की रचना में इनकी गजल अधिक लोकप्रिय हैं, इनकी गजलो में नाजूक ख्याली भी हैं | मर्मस्पर्शिनी क्षमता भी और चट्टानी साहस भी हैं |

बीसवीं सदी के सातवे दशक में हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन और विकसित हुआ, जब नई कविता के अत्यंत समर्थ और प्रतिष्ठित कवि, गजलकार, दुष्यंत कुमार गजल विधा की ओर उन्मुख हुए, दुष्यंत कुमार के साथ ही उनके समकालीन रचनाकारों ने भी गजल को अपनी मुख्य विधा के रूप में अपनाया " यह कोई मामूली बात नहीं, बल्कि एक युगांतकारी घटना थी | जिसके कारणों की तलाश भी आवश्यक हैं | इन्हीं स्थितियों में नई कविता के छद्मोंसे ऊबकर दुष्यंत कुमार ने लिखा था कि 'मै' यह बराबर महसूस करता हूँकि कविता में आधुनिकता का छद्म, कविता को बराबर पाठकों से दूर करता चला गया है | कविता और पाठकों के बीच इतना फासला कभी नहीं था जितना आज हैं | इससे भी ज्यादा दुखद बात यह हैंकि कविता धीरे-धीरे अपनी पहचान और कवि अपनी शख्सियत खोता चला जा रहा हैं | ऐसा परतीत होता हैं, मानो दो दर्जन कवि एक ही शैली और शब्दावली में एक ही कविता लिख रहे हैं, और इस कविता के बारे में यह सामाजिक और राजनीतिक क्रांति की भूमिका तैयार कर रही हैं |

५.६ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) गजल के अर्थ को परिभाषित कीजिए |

२) गजल के प्रमुख स्वरुपों पर प्रकाश डालिए |

३) गजल की प्रमुख विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए |

४) गजल विधा पर टिप्पणी लिखिए |

५) प्रमुख गजलकारो का सामान्य परिचय दीजिए |

५.७ लघुत्तरीय प्रश्न

१) हिन्दी गजल विधा का विकास कौन सी भाषा से हुआ है?

उत्तर - हिन्दी गजल विधा का विकास फारसी और उर्दू भाषा से हुआ है |

२) गजल को परिभाषित करते हुए किस विद्वान ने इसे 'छन्दिक विधा' कहा है ?

उत्तर - ज्ञानेंद्र

३) डॉ. नगेंद्र वशिष्ट के विचारों से गजल का मूल क्षेत्र किससे संबंधित है ?

उत्तर - नारी विषयक भावो से

४) गजल को गीतिका नाम किसने दिया ?

उत्तर - गोपालदास नीरज ने

५) सामान्यत: गजल का मुख्य विषय होता है ?

उत्तर - प्रेम या इश्क

५.८ संदर्भ ग्रंथ

१) हिन्दी गजल और गजलकार – डॉ. मधु खराटे

२) गजल का काव्य शास्त्र – डॉ. महेश गुप्ता

❖❖❖❖

६

छन्द : सामान्य परिचय, लक्षण एवं उदाहरण
मात्रिक छंद

इकाई की रूपरेखा :

६.१ उद्देश्य

६.२ प्रस्तावना

६.३ मात्रिक छन्द परिभाषा

६.४ मात्रिक छन्द के भेद

६.४.१ चौपाई

६.४.२ रोला

६.४.३ दोहा

६.४.४ हरिगीतिका

६.४.५ उल्लाल्ला

६.४.६ ताटंक

६.४.७ सोरठा

६.४.८ कुण्डलिया

६.५ सारांश

६.६ दीर्घोत्तरी प्रश्न

६. ७ लघुत्तरी प्रश्न

६. ८ संदर्भ ग्रंथ

६.१ उद्देश्य

- मात्रिक छन्द की परिभाषा को समझने में सहायक |
- मात्रिक छन्द के भेदों को समझने हेतु |
- चौपाई, रोला, दोहा की समझने हेतु |
- हरिगीतिका, उल्लाला, ताटंक को समझने हेतु |
- सोरठा, कुण्डलिया को समझने हेतु |

६.२ प्रस्तावना

छन्द शब्द 'चद्' धातु से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ होता हैं, खुश करना | हिन्दी साहित्य के अनुसार अक्षर-अक्षरों की संख्या, मात्रा, गणना. यति और गति से संबंधित किसी विषय पर रचना को छन्द कहा जाता हैं | अर्थात निश्चित, चरण, लय, गति से संबंधित किसी विषय पर गण से नियोजित किसी पद्य रचना को छन्द कहते हैं | अँग्रेजी में छन्द को 'Meta' और कभी-कभी 'Verse' भी कहते हैं | एक छन्द में चार चरण होते हैं, चरण, छन्द का चौथा हिस्सा होता हैं, चरण को पाद भी कहा जाता हैं | हर पाद में वर्णों या मात्राओं की संख्या निश्चित होती हैं | छन्द के दूसरे और चौथे चरण को समचरण तथा पहले और तीसरे चरण को विषमचरण कहते हैं | छन्द के चरणों को वर्ण की गणना के अनुसार व्यवस्थित किया जाता है, छन्द में जो अक्षर प्रयुक्त होते हैं; उन्हें वर्ण कहते हैं | मात्रा की दृष्टि से भी वर्ण दो प्रकार के होते हैं–लघु या हृस्व, गुरु या दीर्घ | जिन्हें बोलने में कम समय लगता हैं, उसे लघुहृस्व वर्ण कहते हैं, इनका चिन्ह (|) होता हैं | जिन्हें बोलने में लघु वर्ण से भी ज्यादा समय लगता हैं, उन्हें गुरु या दीर्घवर्ण कहते हैं | इसका चिह्न (S) की तरह होता हैं |

६.३ मात्रिक छन्द : परिभाषा

मात्रा की गणना के आधार पर की गई पद की रचना को मात्रिक छन्द कहते हैं | अर्थात जिन छन्दों की रचना मात्राओं की गणना के आधार पर की जाती हैं, उसे भी मात्रिक छन्द कहते हैं | जिसमें मात्राओं की संख्या लघु, गुरु, यति, गति के आधार पर पद रचना की जाती हैं, उसे मात्रिक छन्द कहते हैं |

जैसे – बंदऊँ गुरु पद, पदुम परागा, सुरुचि सुवास सरस अनुरागा |

अमियमूरिमय चूरन चारू, समन सकल भव रूज परिवारु ||

मात्रिक छन्द के भी तीन भेद किए गए हैं–

i) सममात्रिक छन्द

ii) अर्द्धमात्रिक चन्द

iii) विषम मात्रिक चन्द

i) सममात्रिक छन्द

जहाँ पर छन्द में सभी चरण समान होते हैं, उसे सममात्रिक छन्द कहते हैं |

जैसे - मुझे नहीं ज्ञात कि मै कहाँ हूँ,
प्रभो ! यहाँ हूँ अथवा वहाँ हूँ |

ii) अर्द्धमात्रिक चन्द

जिसमें पहला और तीसरा चरण एक समान होता हैं तथा दूसरा और चौथा चरण उनसे अलग होते हैं, लेकिन आपस में एक जैसे ही होते हैं, उसे अर्द्धमात्रिक छन्द कहते हैं |

iii) विषम मात्रिक चन्द

जहाँ चरणों में दो चरण अधिक समान न हों उसे विषम मात्रिक छन्द कहते हैं | ऐसे छन्द प्रचलन में कम होते हैं |

६.४ मात्रिक छन्द के भेद

मात्रिक छन्द के कुल सोलह भेद हैं |

१) दोहा छन्द

२) सोरठा छन्द

३) रोला छन्द

४) गीतिका छन्द

५) हरिगीतिका छन्द

६) उल्लाला छन्द

७) चौपाई छन्द

८) बरवै (विषम) छन्द

९) छप्पय छन्द

१०) कुंडलिया छन्द

११) दिगपाल छन्द

१२) आल्हा या वीरछन्द

१३) सार छन्द

१४) ताटंक छन्द

१५) रुपमाला छन्द

१६) त्रिभंगी छंद

६.४.१ चौपाई :

यह एक मात्रिक छन्द होता हैं, इसमे चार चरण होते हैं | इसके प्रत्येक चरण में सोलह-सोलह मात्राएँ होती हैं | चरण के अन्त में गुरु या लघु नहीं होता हैं, किन्तु दो गुरु या दो लघु हो भी सकते हैं | अंत में गुरु वर्ण होने से छन्द में रोचकता आती हैं |

जैसे - (i) । । । । ऽ। । । । । । ऽऽ

इहि विधि राम संबंधी समु झावा

गुरु पद पदुम, हरिष सिर नावा ||

(ii) । । । । । । । । । । । ऽ ऽ । । । । ऽ । । । । । । । ऽ ऽ

बदउ गुरु पद पदुम परागा | सुरुचि सुबास सरस अनुरागा|

अमिय मूरि मय चूरन चारू, समन सकल भव रुज परिवारू||

६.४.२ रोला छन्द :

रोला एक मात्रिक छन्द होता हैं | इसके प्रत्येक चरण ११ और १३ के क्रम से २४ मात्राएँ होती हैं | इसके अन्त में दो गुरु और दो लघु वर्ण होते हैं |

उदाहरण – (i) ऽ ऽ । । । । ऽ । । । । । । । । ऽ । । ऽ

नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर हैं |

सूर्य चन्द्र युग, मुकुट मेघला रत्नाकर हैं |

नदियाँ प्रेम-प्रवाह फूल तारे मंडल हैं |

बंदी जन खग वृन्द, शेषफन सिंहासन हैं |

(ii) यही सयानो काम, राम को सुमिरन कीजै |

पर स्वारथ के काज, शीश आगे धर दीजै ||

६.४.३ दोहा छन्द :

दोहा अर्धसममात्रिक छन्द होता हैं, यह सोरठा छन्द के ठीक विपरीत होता हैं | इसमें पहले और तीसरे चरण में १३-१३ तथा दूसरे और चौथे चरण में ११-११ मात्राएँ होती हैं | इसमें चरण के अन्त में एक लघु का होना जरुरी होता हैं |

उदाहरण – (i) ऽ । । ऽऽ ऽ। ऽ ऽऽ ऽ। ।ऽ।

कारज धीरे होत हैं, काहे होत अधीर |

समय पाय तरुवर फरै, केतक सींचो नीर |

(ii) तेरी मुरली मन हरो, घर अंगना न सुहाय |

(iii) श्री गुरुचरण सरोज रज, निज मन मुकुर सुधारि |

बरनऊँ रघुबर विमल जसु, जो दायकु फल चारि |

रात्रं-दिवस, पूनम-अमा, सुख-दुख, छाया-धूप |

यह जीवन बहुरूपिया, बदले कितने रूप ||

६.४.४ हरि गीतिका छन्द :

हरिगीतिका एक मात्रिक छन्द होता हैं | इसमें कुल चार चरण होते हैं | इसके प्रत्येक चरण में १६ और १२ के क्रम से २८ मात्राएँ होती हैं | इसके अन्त में लघु और गुरु का प्रयोग अधिक प्रसिद्ध हैं |

उदाहरण : (i) ऽऽ।। ऽ।। ऽ ऽ ऽ ।।। ऽ।ऽ ।।ऽ

मेरे इस जीवन की हैं तू, सरस साधना कविता |

मेरे तरू की तू कुसुमित, प्रिय कल्पना लतिका |

मधुमय मेरे जीवन की प्रिय, हैं तू कल कामिनी |

मेरे कुंज कुटीर द्वार की, कोमल चरण गामिनी |

६.४.५ उल्लाला छन्द :

यह एक मात्रिक छन्द होता हैं | इसके प्रत्येक चरण में १५ और १३ के क्रम से कुल २८ मात्राएँ होती हैं |

उदाहरण : ।।ऽ ।।ऽ। ।ऽ।ऽ ।। ऽऽ ।। ऽ।ऽ

करते अभिषेक पयोद हैं, बलि हारी इस वेश की |

हे मातृभूमि ! तू सत्य ही, सगुण मूर्ति सर्वेश की ||

६.४.६ ताटंक छन्द :

ताटंक छन्द के प्रत्येक चरण में १६,१४ की यति से ३० मात्राएँ होती हैं |

उदाहरण : फूलों की डोली में आई, शर्माती बरखा रानी |

इठलाती इतराती आई, कर बैठी कुछ नादानी |

बादल गरजे बिजली चमकी, झूम-झूम बरस पानी |

भीग गया गोरी का आँचल, चिपक गई चुनरी धानी |

६.४. ७ सोरठा छन्द :

यह अर्द्ध सममात्रिक छन्द होता हैं, और यह दोहा छन्द के ठीक विपरीत होता हैं | इसके पहले और तीसरे चरण में ११-११ तथा दूसरे और चौथे चरण में १३-१३ मात्राएँ होती हैं | विषम चरणों के अन्त में एक गुरु और एक लघु मात्रा का होना अनिवार्य होता हैं | इसका तुक प्रथम और तृतीय चरणों में होता हैं |

उदाहरण : (i) कहैं जू पावै कौन, विद्या धन उद्दम बिना |

ज्यों पंखे की पौन, बिना डुलाये न मिले |

(ii) जो सुमिरत सिधि होय, गन नायक करिबर बदन |

करहु अनुग्रह सोय, बुद्धि रासि सुभ गुण सदन ||

६.४.८ कुण्डलिया छन्द :

कुण्डलिया एक विषम मात्रिक छन्द होता हैं | इसमें कुल ६ चरण होते हैं, आरम्भ के दो चरण दोहा के और बाद के चार चरण उल्लाला छन्द के होते हैं | इस प्रकार से प्रत्येक चरण में कुल चौबीस मात्राएँ होती हैं |

उदाहरण : (i) घर का जोगी जोगना, आन गाँव का सिद्ध |

बाहर का बक हंस हैं, हंस घरेलू गिद्ध |

हंस घरेलू गिद्ध, उसे पूछेन कोई |

जो बाहर का होई, समादर ध्याता सोई ||

चित्त वृत्ति यह दूर, कभी न किसी की होगी |

६.५ सारांश

संस्कृत साहित्य में सामान्यत: लय को बताने के लिए छन्द शब्द का प्रयोग किया गया हैं | मात्राक्षर, संख्या, नियता, विशिष्ट अर्थ या गीत में वर्णों की संख्या और स्थान से संबंधित नियमों को छन्द कहते हैं, जिनसे काव्य में लय और रंजकता आती हैं | छोटी, बड़ी, ध्वनियाँ, लघु-गुरु उच्चारणों के क्रमों में मात्रा बताती हैं, और जब किसी काव्य रचना में ये एक व्यवस्था के साथ सामंजस्य प्राप्त करती हैं, तब उसे एक शास्त्रीय नाम दे दिया जाता हैं, और लघु-गुरु मात्राओं के अनुसार वर्णों की यह व्यवस्था एक विशिष्ट नाम वाला छंद कहलाने लगताहैं, जैसे चौपाई, दोहा, सोरठा, कुण्डलिया छन्द आदि | इस प्रकार की व्यवस्था में मात्रा अथवा वर्णों की संख्या, विराम, गति, लय तथा तुक आदि नियमों को भी निर्धारित किया गया हैं, जिनका पालन कवि को करना होता हैं |

हिन्दी साहित्य में भी छन्द के इन नियमों का पालन करते हुए ही काव्य रचना की जाती थी, और वह किसी न किसी छन्द में ही होती थी | विश्व की अन्य कई भाषाओं में भी परम्परागत रूप से कविता के लिए छन्द के अपने कुछ निर्धारित नियम होते हैं | छन्दों की रचना और गुण–अवगुण के अध्ययन को छन्दशास्त्र कहते हैं | यदि गद्य की कसौटी व्याकरण हैं, तो कविता की कसौटी छन्द हैं | पद्यरचना का समुचित ज्ञान छन्दशास्त्र की जानकारी के बिना नहीं होता | छन्द से हृदय को भी सौन्दर्य बोध होता हैं, वह हमारे मानवीय भावनाओं को भी झंकृत कर देता हैं | छन्द में एकस्थायित्व होता हैं, वह सरस होने के कारण सभी के मन को प्रभावित करता हैं| छन्द के निश्चित लय पर आधारित होने के कारण वे सुगमतापूर्वक कंठस्थ भी हो जाते हैं | छन्दों के पढ़ने के प्रवाह या लय को गति कहते हैं | गति का महत्व वर्णिक छन्दोंकी अपेक्षा मात्रिक छंदों में अधिक है| वर्णिक छंदों में तो लघु-गुरु का स्थान निश्चित रहता है, किन्तु मात्रिक छन्दों में लघु-गुरु का स्थान निश्चित नहीं रहता हैं, उसमें पूरे चरण की मात्राओं का निर्देश भी नहीं रहता हैं | मात्राओं की संख्या ठीक रहने पर भी चरण गति अर्थात प्रवाह में बाधा पड़सकतीहैं | इसलिए मात्रिक छन्दों के निर्दोष प्रयोग के लिए गति का परिज्ञान भी अत्यन्त आवश्यक है| गति का परिज्ञान भाषा की प्रकृति, नाद के परिज्ञान एवं अभ्यास पर निर्भर करता हैं |

छन्द में नियमित वर्ण या मात्रा पर साँस लेने के लिए रुकना पड़ता हैं, इसी रुकने के स्थान को यति या विराम कहते हैं | छोटे छन्दों में साधारणत: यति चरण के अन्त में होती हैं, पर बड़े छन्दों में एक ही चरण में एक से अधिक यति का निर्देश प्राय: छन्द के लक्षण परिभाषा में ही कर दिया जाता हैं, जैसे मालिनी छन्द में पहली यति८ वर्णों के बाद तथा दूसरी यति ७ वर्णों के बाद पड़ती हैं |

६.६ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) मात्रिक छन्द के अर्थ एवं परिभाषा को स्पष्ट कीजिए |

२) मात्रिक छन्द के कितने भेद हैं? स्पष्ट कीजिए |

३) चौपाई छन्द को सोदाहरण समझाइए |

४) रोला छन्द को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए |

५) दोहा और हरीगीतिका छन्द को उदाहरणासहित समझाइए |

६) उल्लाला छन्द की परिभाषा और उदाहरण को स्पष्ट कीजिए |

७) ताटंक और सोरठा छन्द को स्पष्ट कीजिए |

८) कुंडलिया छन्द को उदाहरण सहित समझाइए |

६.७ लघुत्तरी प्रश्न

१) मात्रिक छंद किसे कहते है ?

उत्तर - मात्रा की गणना के आधार पर की गई रचना को मात्रिक छंद कहते हैं |

२) मात्रिक छंद कितने प्रकार के होते है?

उत्तर - मात्रिक छंद तीन प्रकार के होते है |

३) चौपाई में कितने चरण होते है ?

उत्तर - चौपाई में चार चरण होते है |

४) दोहा छंद किस छंद के विपरीत होता है ?

उत्तर - दोहा छंद सोरठा छंद के विपरीत होता है |

५) कुण्डलिया कौन से मात्रिक छंद का प्रकार है ?

उत्तर - कुण्डलिया विषम मात्रिक छंद का प्रकार है |

६.८ संदर्भ ग्रंथ

१) छंद प्रकाश – श्री. रघुनंदन शास्त्री

❖❖❖❖

७

छन्द : सामान्य परिचय, लक्षण एवं उदाहरण
वर्णिक छंद

इकाई की रूपरेखा

७.१ उद्देश्य

७.२ प्रस्तावना

७.३ वर्णिक छन्द परिभाषा

७.४ वर्णिक छन्द के भेद

- ७.४.१ इन्द्रबज्रा
- ७.४.२ उपेन्द्र बज्रा
- ७. ४.३ दुत विलंबित
- ७. ४.४ वंशस्थ
- ७. .४.५ भुजंगी
- ७. ४.६ तोटक
- ७ .४.७ बसंततिलका
- ७ .४.८ घनाक्षरी

७.५ सारांश

७. ६ दीर्घोत्तरी प्रश्न

७. ७ लघुत्तरीय प्रश्न

७. ८ संदर्भ ग्रंथ

७.१ उद्देश्य

- वर्णिक छन्द की परिभाषा को समझते हेतु ।
- वर्णिक छन्द के भेदों को समझने हेतु ।

- इन्द्र ब्रजा, उपेन्द्र बज्रा को समझने में सहायक |
- द्रुतविलंबित, वंशस्थ तथा भुजंगी जैसे छन्द को समझने हेतु |
- तोटक, बसंततिलका, घनाक्षरी, जैसे प्रमुख छन्दो को समझने हेतु |

७.२ प्रस्तावना

छन्द की दो प्रमुख इकाइयों में यह दूसरी इकाई हैं | साहित्य के अंगों में छन्द का बहुत अधिक महत्व हैं | काव्य, साहित्य की अत्याधिक महत्वपूर्ण विधा है, और काव्य की सरलता का मूल आधार यदि भावों की सरलता है, तो उसका लयमुक्त होना, उसकी संगीत्माकता तथा सुव्यवस्थित क्रमबद्धता भी अत्यंत आवश्यक हैं | ये सारी विशेषताएँ काव्य को छन्द-बद्धता से ही प्राप्त होती हैं | लय, वर्ण अथवा मात्राओं के व्यवस्थित अनुपात से सुनियोजित काव्य ही अधिक प्रभावशाली, हृदयग्राही एवं स्थायी सिद्ध होता हैं | छन्दो से ही काव्य में रमणीयता तरलता और प्रवाहमयता आती हैं | इसी से काव्य गेय तथा संगीतात्मक भी बनता हैं |

अत: छन्द विवेचन संबंधी इस इकाई में हम छन्द के अर्थ, परिभाषा तथा उसके प्रमुख भेदों का विवेचन, विश्लेषण कर सकेंगे | छन्द के कुछ प्रमुख नियमों का विश्लेषण करते हुए छन्द के अंगो की समीक्षा भी इस इकाई में कर सकेंगे | इसमें हम छन्दो के प्रकारों का विश्लेषण करते हुए लक्षण तथा उदाहरण सहित उसकी समीक्षा भी हम आसानी से कर सकेंगे |

७.३ वर्णिक छन्द की परिभाषा

हम यहाँ जिस रूप में छन्द का विचार करने जा रहे हैं, वह लय विशेष में पदों का बंधन हैं | इस दृष्टि से छन्द का अर्थ हैं– बंधना, वास्तव में काव्य 'शैली' की दृष्टि से दो प्रकार का होता हैं - गद्यमय, पद्यमय | छन्द इतना पुराना हैं की वेदों का नाम भी छान्दस पड गया हैं | उसमें छन्द भी हैं | पद में वह लौकिक छन्दों से भिन्न हैं | इसलिए लौकिक काव्य में प्रयुक्त छन्द लौकिक कहे जाते हैं | लौकिक छन्दों में भी वर्ण और मात्रा के विचार से दो प्रकार के हैं, मात्रिक छंद और वर्णिक छन्द | मात्रिक छन्द वे छन्द हैं जिनमे अक्षरो या वर्णों की मात्राओं के अनुसार नियम निर्धारित होते हैं | इसके पदों में वर्ण क्रम ज्यादा हो सकते हैं | पर मात्रा परस्पर होनी चाहिए | अभिप्राय यह हैं कि मात्रिक छन्दों में मात्रा को ही ध्यान में रखकर नियम बनाए जाते हैं, वर्ण या अक्षरों को नहीं | इसी प्रकार वर्णिक वृत्त है, जिनमें वर्ण या गण को दृष्टि में रखकर नियम बनाये जाते हैं | मुक्तक, दंडक वर्ण वृत्तों में वर्ण नियत होते हैं, गण नहीं, इसलिए उन्हें गणमुक्त होने से मुक्तक कहा जाता हैं |

कुछ छन्दों में चरण होते तो चार ही हैं, पर उन्हें दो ही पंक्तियों में लिख दिया जाता हैं | वहाँ प्रत्येक पंक्ति को दल कहते हैं | हिन्दी में कुछ छन्द छः पंक्तियों के भी होते हैं | ये प्राय: दो छन्दो के योग से बनते हैं | एक के चार चरण, चार पंक्तियों में और दूसरे के चारचरण दो पंक्तियों में | छन्द शास्त्र के पहले और तीसरे चरण को विषम और दूसरे तथा चौथे चरण को सम कहा जाता हैं | हिन्दी में मात्रिक विषम छन्द नहीं होते | इसी प्रकार हिन्दी में वर्णिक

अर्धसम तथा वर्णिक विषम, ये दोनों प्रकार के छन्द भी नहीं होते| इन सम छन्दो (वर्णिक तथा मात्रिक) के भी दो–दो भेद होते हैं | साधारण और दण्डक| मात्रिक साधारण वृत्त उन्हें कहा जाता हैं,जिनके प्रत्येक चरण में बत्तीस तक या उससे भी कम मात्राएँ हो, यदि इससे अधिक मात्रय्रण होती हैं, तो उन्हें दंडक कहा जाता हैं | वर्णिक साधारण छन्दो के प्रत्येक चरण में २६ या उससे कम वर्ण होते हैं | इनसे अधिक हो तो उन्हें दंडक की संज्ञा मिलती हैं| २३ से २६ वर्ण तक के वृत्त प्राय: हिन्दी में सबैया कहे जाते हैं |

परिभाषा –

जिन छन्दो की रचना को वर्णों की गणना और क्रम के आधार पर किया जाता हैं, उन्हें वर्णिक छन्द कहते हैं | वृत्तों की तरह इसमें गुरु और लघु का क्रम निश्चित नहीं होता हैं, बस उसकी वर्ण संख्या ही निश्चित होती हैं | ये वर्णों की गणना पर आधारित होते हैं, जिनमें वर्णों की संख्या, क्रम, गणविधान, लघु-गुरु के आधार पर रचना होती हैं |

७.४ वर्णिक छन्द के भेद

वर्णिक छन्द के प्रमुख भेद इस प्रकार हैं -

१) इन्द्रबजा

२) उपेन्द्र बजा

३) द्रुतविलंबित

४) वंशस्थ

५) भुजंगी

६) तोटक

७) बसंततिलका

८) घनाक्षरी

७.४.१ इन्द्रबज्रा :

इन्द्रबज्रा छन्द के प्रत्येक चरण में ११ वर्ण, दो जगण और बाद में दो गुरु होते हैं | यह एक समवर्णिक छन्द हैं |

जैसे – (i) माता यशोदा हरि को जगावै

प्यारे उठो मोहन नैन खोलो |

द्वारे खड़े गोप बुला रहे हैं |

गोविन्द, दामोदर, माधवेति ||

(ii) मै राज्य की चाह नहीं करुँगा |
हैं जो तुम्हें इष्ट वही करुँगा ||
संतान जो सत्यवती जनेगी ||
राज्याधिकारी वह ही बनेगी ||

७.४.२ उपेन्द्रबज्रा :

यह एक सम वर्ण छन्द हैं, इसके भी प्रत्येक चरण में ग्यारह–ग्यारह वर्ण होते हैं | साथ प्रत्येक चरण में एक जगह एक तगण तथा दो गुरु वर्ण होते हैं |

जैसे - (i) पखारते हैं पद पद्म कोई
चढ़ा रहे हैं फल पुष्प कोई |
करा रहे हैं, पय पान कोई |
उतारते श्रीधर आरती हैं |

(ii) बड़ा कि छोटा कुछ काम कीजै |
परन्तु पूर्वा पर सोचा लीजै ||
बिना विचारे यदि काम होगा |
कभी न अच्छा परिणाम होगा ||

७.४.३ द्रुतलंबित :

यह समवर्ण छन्द होते हैं, इसके चार चरण होते हैं, तथा प्रत्येक चरण में बारह-बारह वर्ण होते हैं | इस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमश: एक नगण, दो भगण तथा रगण होता हैं |

जैसे - (i) दिवस का अवसान समीप था |
गगन था कुछ लोहित हो चला |
तरु शिख पर थी अब राजती |
कमलिनी कुल-वल्लभ की प्रभा ||

७.४.४ वंशस्थ :

यह समवर्ण छन्द हैं, वंशस्थ को वंशस्थविल भी कहा जाता हैं | यह छन्द एक नगण, एक तगण और एक रगण के योग से बनता हैं | इसके प्रत्येक चरण में बारह-बारह वर्ण होते हैं |

जैसे – (i) बसंत ने, सौरभ ने, पराग ने,
प्रदान की थी, अलिकांत भाव से |
वसुंधरा को, पिक को, मिलिन्द को,
मनोग्यता, मादकता, मदान्धता ||

(ii) गिरीन्द्र में व्याप्त विलोकनीय थी,
वनस्थलीय मध्य प्रशंसनीय थी |
अपूर्व शोभा अवलोकनीय थी |
असेत जम्बालिनी, कूल जम्बुकीय ||

७.४.५ भुजंगी छन्द :

भुजंगी छन्द के प्रत्येक चरण में ग्यारह वर्ण होते हैं, जिसमें तीन सगण, एक लघु और एक गुरु होता हैं |

जैसे - (i) शशि से सखियाँ बिनती करती |
टुक मंगल हो बिनती करती |
हरि के पद पंकज देखन दै |
पदि मोटक महि निहारन दै |

७.४.६ तोटक छन्द :

तोटक छन्द के प्रत्येक चरण में बारह माताएँऔर चार सगण होते हैं |

जैसे - (i) शशि से सखियाँ बिनती करती |
टुक मंगल हो बिनती करती |
हरि के पद पंकज देखन दै |
पदि मोहक महि निहारन दै |

७.४.७ बसंततिलका छन्द :

बसंततिलका छन्द में कुल चार चरण होते हैं | इसके प्रत्येक चरण में कुल चौदह वर्ण होते हैं| इसके प्रत्येक चरण में एक तगण, एक भगण, दो जगण और दो गुरु होते हैं |

जैसे - (i) कुंजे वही, थल वही, यमुना वही हैं,
बेलें वही वन नहीं, विटपे वही हैं ||

७.४.८ घनाक्षरी छन्द :

घनाक्षरी छन्द के प्रत्येक चरण में ८,८,८,८, वर्णों की यति से कुल बत्तीस वर्ण होते हैं | अन्त में एक गुरु और लघु का क्रम भी होता हैं |

जैसे - नगर से दूर कुछ, गाँव की सी बस्ती एक |
हरे भरे खेतों के समीप अति अभिराम |
जहाँपत्रजाल अन्तराल से झलकते है |
लाल खपरैळे श्वेत जज्जो के सँवारे धाम |

बीचो-बीच वह वृक्ष खड़ा हैं, विशाल एक |
झूलते हैं, बाल कभी जिसकी लताएँ थाम ||
चढ़ी मंजु मालती लता हैं, जहाँ छाई हुई |
पत्थर से पहियों की चौकियाँ पड़ी हैं श्याम ||

७.५ सारांश

इस प्रकार वर्णिक छन्द की परिभाषा और उसके भेद के बारे में छन्द काव्य के माध्यम से उसे सुरक्षित रखने वाला अद्वितीय साधन हैं | इससे एक-एक वर्ण और एक-एक शब्द का स्थान एवं क्रम निश्चित होने के कारण, काव्य में किसी अनर्थकारी अथवा शिथिलता की संभावना ही नहीं रहती | यह काव्य को नियमित निलंबित एवं संयमित ही नहीं करता उसमें संगीतात्मकता तथा क्रमानुकुल व्यवस्था लाकर प्रवाह एवं वात्सल्यता भी लाता हैं | उसे प्रवाहमय बनाकर प्रभावी तथा हृदयगाही बनाता हैं | छन्दो के नियंत्रण से ही काव्य को स्पंदन, कंपन एवं वेग मिलता हैं, और उसी से निर्जीव अक्षरों में भी सजीवता आ जाती हैं | छन्द और काव्य का संबंध अत्यंत घनिष्ठ संबंध होता हैं | वही इसे रमणीय एवं गेय भी बनाते हैं |

छन्दो में वर्ण, मात्रा, यति-गति तथा गण और तुक आदि की निश्चित योजना ही काव्य को व्यवस्था प्रदान करती हैं | छन्द शास्त्र के अपने ही कुछ नियम भी होते हैं, जिनमें वर्ण का हृस्व एवं दीर्घ होना, अनुस्वारयुक्त वर्ण का दीर्घ या गुरु होना, विसर्ग युक्त वर्णों का हृस्व से दीर्घ हो जाना तथा हलन्त से पूर्व वर्ण एवं हृस्व वर्ण का दीर्घ हो जाना ही प्रमुख हैं | छन्द की मूल आत्मा लय और प्रवाह होते हैं | अत: छादन, आच्छादन, प्रवाह आदि अर्थों का सूचकछन्द अपनी महत्ता के कारण ही विस्तृत और व्यापक होता गया और उसके मात्रिक-वर्णिक आधार पर भेद-उपभेद भी हो गये हैं |

७.६ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) वर्णिक छन्द को परिभाषित कीजिए |

२) वर्णिक छन्द के कितने भेद हैं? सोदाहरण समझाइए |

३) वर्णिक छन्द के अर्थ को स्पष्ट कीजिए |

४) इन्द्रबज्रा छन्द के बारे में सोदाहरण समझाइए |

५) उपेन्द्र बज्रा छन्द की परिभाषा देते हुए, उसे उदाहरणसहित स्पष्ट कीजिए |

६) द्रुतबिलंबित एवं वंशस्थ छन्द को उदाहरणसहित समझाइए |

७) भुजंगी एवं तोटक छन्द को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए |

८) बसंततिलका छन्द को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए |

९) घनाक्षरी छन्द को सोदाहरण समझाइए |

७.७ लघुत्तरीय प्रश्न

१) इन्द्रबज्रा छंद कौन से वर्णिक छंद का प्रकार है ?

उत्तर - इंद्र बज्रा एक समवर्णिक छंद है |

२) भूजंगी छंद के हर एक चरण में कितने वर्ण होते है ?

उत्तर - भूजंगी छंद के प्रत्येक चरण में ग्यारह वर्ण होते है |

३) वर्णिक छंद किसे कहते है ?

उत्तर - वर्ण या गण को दृष्टि में राखाकार की गई रचना को वर्णिक छंद कहते है |

४) बसंततिलका छंद कौन से छंद का एक प्रकार है ?

उत्तर - बसंततिलका छंद वर्णिक छंद का एक प्रकार है |

५) प्रत्येक चरण में वर्णों की यति से कुल बत्तीस वर्ण होते है | अन्त में एक लघु एक गुरु का क्रम होता है | यह विशेषता कौन से छंद की है ?

उत्तर - घनाक्षरी छंद

७.८ संदर्भ ग्रंथ

१) छंद प्रकाश – श्री. रघुनंदन शास्त्री

❖❖❖❖

Turnitin Originality Report

Processed on: 17-Aug-2022 13:06 IST
ID: 1883482442
Word Count: 40319
Submitted: 1

SAHITY SAMIKSHA CHAND &ALANKAR By Tyba Idol,university Of Mumbai

Similarity Index	Similarity by Source	
6%	Internet Sources:	3%
	Publications:	0%
	Student Papers:	3%

2% match (student papers from 02-Jul-2021)
Submitted to Rhodes College on 2021-07-02

< 1% match (student papers from 02-Jul-2021)
Submitted to Rhodes College on 2021-07-02

< 1% match (student papers from 02-Jul-2021)
Submitted to Rhodes College on 2021-07-02

< 1% match (student papers from 02-Jul-2021)
Submitted to Rhodes College on 2021-07-02

< 1% match (Internet from 02-Jul-2019)
http://www.mgahv.in/Pdf/Dist/gen/MAHD-3_bharatiya_kavya_shastra_17_07_17.Pdf

< 1% match (Internet from 09-Nov-2019)
http://www.mgahv.in/Pdf/Dist/gen/MAHD_13_aadhunikkaleen_hindi_kavya.pdf

< 1% match (Internet from 02-Jul-2019)
http://www.mgahv.in/Pdf/Dist/gen/MAHD-7_madhyakalleen_hindi_kavya.pdf

< 1% match (Internet from 02-Jul-2019)
http://www.mgahv.in/Pdf/Dist/gen/MAHD-1_prarambhik_hindi_kavya.pdf

< 1% match (Internet from 02-Jul-2019)
http://www.mgahv.in/Pdf/Dist/gen/MAHD-10_hindi_sahitya_ka_itihas_2.pdf

< 1% match (Internet from 12-Oct-2021)
https://www.uou.ac.in/sites/default/files/slm/MAPS-104.pdf

< 1% match (Internet from 11-Oct-2021)
https://www.uou.ac.in/sites/default/files/slm/BAHL-201.pdf

< 1% match (Internet from 16-Aug-2021)
https://www.uou.ac.in/sites/default/files/slm/BAPS-101.pdf

< 1% match (Internet from 12-Oct-2021)
https://www.uou.ac.in/sites/default/files/slm/MAPSY-102.pdf

< 1% match (Internet from 12-Oct-2021)
https://www.uou.ac.in/sites/default/files/slm/MAED-201.pdf

< 1% match (Internet from 11-Oct-2021)
https://www.uou.ac.in/sites/default/files/slm/BAED-201.pdf

< 1% match (Internet from 11-Sep-2021)
https://www.uou.ac.in/sites/default/files/slm/MAHS-02.pdf

< 1% match (Internet from 12-Oct-2021)
https://www.uou.ac.in/sites/default/files/slm/MAPS-204.pdf

< 1% match (Internet from 12-Oct-2021)
https://www.uou.ac.in/sites/default/files/slm/MAPA-102.pdf

< 1% match (Internet from 05-Dec-2020)
http://www.uou.ac.in/sites/default/files/slm/BASO-102.pdf

< 1% match (Internet from 12-Oct-2021)
https://www.uou.ac.in/sites/default/files/slm/MAHL-204.pdf

< 1% match (Internet from 14-Nov-2015)
http://assets.vmou.ac.in/HD04.pdf

< 1% match (Internet from 14-Nov-2015)
http://assets.vmou.ac.in/HD01.pdf

< 1% match (Internet from 14-Nov-2015)
http://assets.vmou.ac.in/BC03.pdf

< 1% match (Internet from 14-Nov-2015)
http://assets.vmou.ac.in/HD05.pdf

< 1% match (Internet from 14-Nov-2015)
http://assets.vmou.ac.in/BED113.pdf

< 1% match (Internet from 14-Nov-2015)
http://assets.vmou.ac.in/BC04.pdf

< 1% match (Internet from 14-Nov-2015)
http://assets.vmou.ac.in/BLIS1.pdf

< 1% match (Internet from 28-Apr-2021)
http://assets.vmou.ac.in/MAGP07.pdf

< 1% match (Internet from 14-Nov-2015)
http://assets.vmou.ac.in/BO10.pdf

< 1% match (Internet from 14-Nov-2015)
http://assets.vmou.ac.in/MAED-17.pdf

< 1% match (student papers from 25-Sep-2021)
Submitted to Central University of Himachal Pradesh, Dharamshala on 2021-09-25

< 1% match (student papers from 24-Sep-2021)
Submitted to Central University of Himachal Pradesh, Dharamshala on 2021-09-24

< 1% match (student papers from 17-Aug-2022)
Class: Quick Submit
Assignment: Quick Submit
Paper ID: 1883481125

< 1% match (student papers from 02-Dec-2021)
Submitted to The University of the South Pacific on 2021-12-02

< 1% match (Internet from 24-Nov-2018)
https://baadalsg.inflibnet.ac.in/bitstream/10603/62564/1/microsoft%20word%20-%20all%20chapter_bhavar%202.pdf

< 1% match (Internet from 31-Jan-2022)
https://leverageedu.com/blog/hi/wp-content/uploads/sites/2/2021/06/%E0%A4%9B%E0%A4%82%E0%A4%A6.pdf

< 1% match (Internet from 07-Apr-2022)
https://www.spkcollege.org/uploads/syllabus/1646906628_567461128.pdf

< 1% match (student papers from 29-Dec-2016)
Submitted to Jawaharlal Nehru University (JNU) on 2016-12-29

< 1% match (Internet from 27-Oct-2021)
https://www.adda247.com/teaching-jobs-exam/wp-content/uploads/2020/07/03183629/MSTET_7th-Mar-_Shift2_HE-Hindi.pdf

< 1% match (Internet from 04-Aug-2022)
https://uou.ac.in/sites/default/files/slm/MAHL-508.pdf

< 1% match (student papers from 12-Nov-2021)
Submitted to Pacific University on 2021-11-12

< 1% match (student papers from 15-Nov-2017)
Submitted to Pacific University on 2017-11-15

< 1% match (Internet from 11-May-2022)
https://www.eastrohelp.com/blog/wp-content/uploads/2021/09/Guru-Vandana-PDF.pdf

< 1% match (student papers from 29-Dec-2021)
Submitted to Lovely Professional University on 2021-12-29

< 1% match (student papers from 12-Feb-2016)
Submitted to Marion County School District on 2016-02-12

< 1% match (student papers from 11-Nov-2019)
Submitted to Pathways School on 2019-11-11

< 1% match (Internet from 31-Mar-2022)
https://www.wiidrj.com/_files/ugd/622008_759b318cdfce4e7bb985ec37eacffb5f.pdf

< 1% match (Internet from 09-Nov-2020)
https://epub.ub.uni-muenchen.de/5363/1/5363.pdf

< 1% match (Internet from 01-Nov-2020)
http://elearning.uou.ac.in/pluginfile.php/420/mod_resource/content/1/BAHI-102.pdf

< 1% match (Internet from 27-Feb-2022)
http://mzuir.inflibnet.ac.in:8080/jspui/bitstream/123456789/1096/1/ARADHANA%20SHUKLA%2c%20Hindi.pc

< 1% match (https://www.vingle.net/collections/2315089)
https://www.vingle.net/collections/2315089

< 1% match (publications)
"Bibliographien und Anmerkungen zum zweiten Teil", Walter de Gruyter GmbH, 1959

< 1% match (Internet from 09-Dec-2020)
https://www.sarkarischoolsolutions.com/wp-content/uploads/2020/06/science-Class-6.pdf

31 lel=ee³re JeUNIVERSITY OF MUMBAI ÒeeO³eeHekeÀ jeJfebê o. kegÀuekeÀCeea Òe-keÀgueie©g, ceybgeF& eJfeÐeeHeeþr, ceybgeF& ÒeeO³eeHekeÀ mengeme He[sCeskeÀj keÀgueiegª, cegybeF& eJfeÐeeHeeþr, cegybeF& ÒeeO³eeHekeÀ ÒekeÀeMe ceneveJeej me®beeuekeÀ, ojt Je cekgelÌe DeO³e³eve membLee, ceybgeF& eJfeÐeeHeeþr, cebgyeF& keÀe³e¬&eÀce mecevJe³ekeÀ DeY³eeme mecevJe³ekeÀ SJeb meHbeeokeÀ : Þee.r Deefveue Deej. yevekeÀj men³eeiseer ÒeeO³eeHekeÀ Felfeneme SJeb keÀuee MeeKee ÒeceKge, otj Je cekgelÌe DeO³e³eve membLee, ceybgeF& eJfeÐeeHeeþr, ceybgeF& : [e@. meOb³ee eMfe. iepex mene³ekeÀ ÒeeO³eeHekeÀ, otj Je cekgelÌe DeO³e³eve mebmLee, ceybgeF& eJfeÐeeHeeþr meelbee¬eÀgPe (He)t, ceybgeF& - 400 098 uesKekeÀ : [e.@ Depeelre keÀgceej je³e mene³³ekeÀ ÒeeO³eeHekeÀ, efnvoer eJfeYeeie, keÀs.mee.r ceneeJfeÐeeue³e, ®e®ei&eÌs, ceybgeF& [e@. cenelcee HeeC[³se mene³³ekeÀ